UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182068

UNIVERSAL
LIBRARY

कपाल-कुंडला

मूललेखक

उपन्याससम्राट्

बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

सर्वोदय साहित्य मन्दिर

'ublished by
K. Mittra.
at The Indian Press, Ltd.
Allahabad.

CHECKED 1950
By SL. & L.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd
Benares-Branch.

पहला खण्ड

पहला परिच्छेद

सागर-सङ्गम में

"Floating straight obedient to the stream"

—**Comedy of Errors**

ढाई-सौ साल पहले एक दिन माघ-महीने की रात समाप्त होते-होते यात्रियों की एक नाव गङ्गासागर से लौट रही थी। पोर्तुगीज़ और दूसरे जलदस्युओं के डर से यात्रियों की नावों का सङ्गठित रूप से आना-जाना ही उस समय की प्रथा थी। परन्तु इस नाव के आरोही अकेले थे। इसका कारण यह है कि रात बीतते-बीतते घोर कुहरा चारों ओर छा गया था: नाविक दिशा का निरूपण न कर पाने की वजह गोल से छुटकर दूर निकल गये थे। अब किस तरफ़ कहाँ जा रहे हैं, इसका कोई निश्चय नहीं था। नाव के अधिकांश आरोही सो रहे थे। सिर्फ़ एक प्राचीन और एक युवा, ये दो आदमी, जग रहे थे। प्राचीन जन युवा के साथ बातचीत कर रहे थे। एक दफ़ा बातचीत बन्द कर वृद्ध ने नाविकों से पूछा, "माझी, आज कितनी दूर जा सकोगे?" माझी कुछ इधर-उधर करके बोला, "बता नहीं सका।"

वृद्ध नाराज़ होकर माझी को खरी-खोटी सुनाने लगे। युवक ने कहा, "महाशय, जो ईश्वर के हाथ में है, उसे पण्डित भी नहीं बता सकते—वह मूर्ख किस तरह बतलायेगा? आप व्यस्त न हों।"

वृद्ध ने उग्र भाव से कहा—"व्यस्त नहीं हूँगा? कहते क्या हो? बदमाश बीस-पच्चीस बीघे का धान काट ले गये, लड़के-बच्चे साल भर खायँगे क्या?"

यह ख़बर गङ्गासागर पहुँचने पर उन्हें पीछे से आनेवाले यात्रियों की ज़बानी मिली थी। युवा ने कहा, "मैंने पहले ही कहा था, महाशय के मकान में कोई दूसरा अभिभावक नहीं—महाशय का आना अच्छा नहीं हुआ।"

प्राचीन ने पहले की तरह उग्र भाव से कहा, "आऊँगा नहीं? तीन पन बीत गये, चौथे में पड़ा हूँ। परकाल के लिए अभी नहीं चेतूँगा तो कब चेतूँगा?"

युवा ने कहा, "अगर शास्त्र मैं समझा हूँ, तो नीर्थ-दर्शन से परकाल का जैसा कर्म होता है, वैसा घर बैठकर भी हो सकता है।"

वृद्ध ने कहा, "तो तुम क्यों आये?"

युवा ने जवाब दिया, "मैं तो पहले ही कह चुका हूँ, कि समुद्र देखने की बड़ी लालसा थी, इसी लिए आया हूँ।" बाद को और मुलायम स्वर से कहने लगे, "अहा! क्या देखा! जन्म-जन्मान्तर में भी नहीं भूलूँगा!

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमाललतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलंकरेखा॥"

वृद्ध के कान कविता की तरफ़ नहीं थे। नाविक आपस में जो बातचीत कर रहे थे, उसे ही एकाग्रचित्त से सुन रहे थे।

एक नाविक दूसरे से कह रहा था, "ओ भाई! यह तो बड़ा बुरा काम हुआ। अब हम बाहर-दरिया में आ पड़े या किसी दूसरे देश में आये, कुछ समझ में नहीं आ रहा।"

कहनेवाले का स्वर बहुत ही भय-व्याकुल था। वृद्ध ने समझा, कोई विपत्ति सामने है। शङ्कित चित्त से पूछा, "माझी, क्या हुआ है?" माझी ने जवाब नहीं दिया। परन्तु युवक उत्तर की प्रतीक्षा न कर बाहर आये। बाहर आकर देखा, प्रायः प्रभात हो आया है। चारों ओर गहरा कुहरा छाया हुआ है। आकाश, नक्षत्र, चन्द्र, उपकूल, किसी तरफ़ कुछ नहीं देख पड़ता। समझे, नाविकों को दिग्भ्रम हुआ है। अब किस तरफ जा रहे हैं; इसका निश्चय नहीं प्राप्त हो रहा। कहीं बाहर समुद्र में पड़कर अकूल में मारे जायँ, इस आशङ्का से डरे हुए हैं।

ओस बचाने के लिए सामने पर्दा लगाया हुआ था, इसलिए नाव के भीतर से आरोही यह सब विषय नहीं मालूम कर सके। परन्तु नवीन यात्री अवस्था मालूम कर वृद्ध से सविशेष कहने लगे, तब नाव में बड़ा कोलाहल मचा। जितनी स्त्रियाँ नाव में थीं, उनमें कोई कोई बातचीत की आवाज़ से जग गईं; सुनते ही वे आर्तनाद कर उठीं। प्राचीन ने कहा, "किनारे चलो, किनारे चलो, किनारे चलो।"

नवीन ने ज़रा मुसकराकर कहा, "किनारा कहाँ है? यह मालूम होने पर इतनी विपत्ति क्यों होगी?"

यह सुनकर नाव के आरोहियों का और भी कोलाहल बढ़ा। किसी तरह उन लोगों को ठण्ढा कर नवीन यात्री ने नाविकों से कहा, "आशङ्का की बात कुछ भी नहीं, सुबह हो गई है—चार-पाँच दण्ड में अवश्य सूर्योदय होगा। चार-पाँच दण्ड में नाव को कोई ख़तरा नहीं पहुँच सकता। तुम लोग इस समय डाँड़ चलाना बन्द

करो, बहाव में नाव जहाँ चाहे जाय; बाद को धूप निकलने पर सलाह की जायगी।"

नाविक यह सलाह मानकर तदनुरूप आचरण करने लगे।

बहुत देर तक नाविक निश्चेष्ट रहे। भय से यात्रियों के प्राण कण्ठ में आ गये। हवा का नामोनिशान नहीं था। इसलिए वे तरङ्गों के झकोरे और कम्पन कुछ मालूम नहीं कर सके। फिर भी सब ने निश्चय किया कि मौत नज़दीक है। मर्द चुपचाप ईश्वर का नाम जपने लगे, स्त्रियाँ स्वर भरकर तरह-तरह के शब्द न्यास से रोने लगीं। एक स्त्री गङ्गासागर में समुद्र को अपना लड़का चढ़ा आई थी, लड़का पानी में छोड़कर फिर निकाल नहीं सकी थी, सिर्फ़ वही नहीं रोई।

प्रतीक्षा करते-करते अन्दाज़न एक पहर दिन चढ़ आया। ऐसे समय अकस्मात् नाविक दरिया के पाँचपीर का नाम लेकर महाकोलाहल कर उठे। यात्रियों में सब के सब पूछ उठे, "क्या है! क्या है! माझी, क्या हुआ?" माझी भी समस्वर से कोलाहल करते हुए कहने लगे, "धूप निकली है! धूप निकली है! किनारा! किनारा! किनारा!" यात्रियों में सभी उत्सुकता के साथ नाव के बाहर आकर, कहाँ आये हैं, क्या माजरा है, देखने लगे। देखा, सूरज निकल आया है, कुहरे का अंधेरा दिङ्मण्डल से बिलकुल विमुक्त हो गया है। दिन पहर भर से ज़्यादा चढ़ आया है। जिस जगह नाव आई है, वह सही-सही महासमुद्र नहीं, नदी का मुहाना है, परन्तु वहाँ नदी का जैसा पाट है, वैसा और कहीं भी नहीं, नदी का एक किनारा नाव के बहुत निकट है सही, यहाँ तक कि पचास हाथ के भीतर होगा, परन्तु दूसरे किनारे का कहीं निशान तक नहीं देख पड़ता। और जिस तरफ़ भी देखा जाता है, अनन्त जलराशि चञ्चल रवि-रश्मियों से प्रदीप्त होकर आकाश के प्रान्त

में आकाश से मिल रही है। पास का पानी प्रायः पंकिल, नदी के पानी की तरह का है। परन्तु दूर की वारिराशि नीलाभ है। आरोहियों ने यह सिद्धान्त किया कि वे महासमुद्र में आ पड़े हैं। लेकिन सौभाग्य थे कि किनारा पास है, शङ्का की बात नहीं। सूरज की तरफ देखते हुए दिशा का निरूपण किया। सामने जो उपकूल देख रहे थे, वह समुद्र का पश्चिमी तट है, सहज सिद्धान्त हुआ। तट के बीच, नाव के कुछ ही दूर, एक दूसरी नदी का मुँह मन्दगामी कलवौत प्रवाह की तरह आकर मिल रहा था। सङ्गम-स्थल के दाहनी ओर बालू के एक बड़े भाग में टिटिहरी आदि अगणित चिड़ियाँ क्रीड़ा कर रही थीं। इस नदी का नाम अब 'रसूलपुर की नदी' पड़ा है।

दूसरा परिच्छेद

उपकूल में

"In gratitude! Thou marble-hearted fiend!"

—King Lear.

आरोहियों की उत्साहवाली बातें समाप्त होने पर नाविकों ने प्रस्ताव किया कि ज्वार आने की अभी कुछ देर है, इसी अवकाश में आरोही सामने की रेती पर भोजन पका लें; बाद को जलोच्छ्वास के आरम्भ में ही स्वदेश की ओर यात्रा कर सकेंगे। नाविकों ने नाव किनारे बाँधी। आरोही उतरे और स्नान आदि प्रातःकृत्य करने को तत्पर हुए।

स्नान के बाद पाक के उद्योग में एक और नई विपत्ति सामने आई। नाव पर जलाने की लकड़ी नहीं थी। बाघ के डर से ऊपर रेती में लकड़ी ले आने को कोई राज़ी नहीं हुआ। अन्त में सबके उपवास की तैयारी देखकर प्राचीन ने उक्त युवा को सम्बोधन करके कहा, "बेटा नवकुमार! तुम इसका उपाय, नहीं करोगे तो हम इतने आदमी मर जायँगे।"

कुछ देर सोचकर नवकुमार से कहा, "अच्छा मैं ही जाऊँगा; कुल्हाड़ी दो; और हँसिया लेकर एक आदमी मेरे साथ आओ।"

नवकुमार के साथ किसी ने जाना नहीं चाहा।

"भोजन के वक्त देखा जायगा" यह कहकर नवकुमार कमर बाँधकर अकेले कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी लेने चले।

तीर पर चढ़कर नवकुमार ने देखा, जितनी दूर निगाह जाती है, उतने में कहीं बस्ती के लक्षण नहीं देख पड़ते। केवल वन है। परन्तु वह बड़े पेड़ों से शोभित या निविड वन नहीं। केवल जगह-जगह छोटी-छोटी झाड़ियाँ मण्डलाकार किसी किसी भूखण्ड को घेरे हुए हैं। उनमें नवकुमार ने लेने लायक़ लकड़ी नहीं देखी। इसलिए उपयुक्त वृक्ष की खोज में नदी के किनारे से अधिक दूर जाना पड़ा। अन्त में काटने लायक़ एक पेड़ मिला। उसमें उन्होंने आवश्यकतानुसार लकड़ी ली। लकड़ी ढोकर लाना एक और विषम काम मालूम दिया। नवकुमार ग़रीब के लड़के नहीं थे, इन सब कामों का अभ्यास नहीं था, अच्छी तरह विचार किये बिना लकड़ी लेने गये थे। परन्तु अब लकड़ी का बोझ बड़ा कष्टकर मालूम देने लगा। जो हो, जिस काम में लग गये हैं, उससे ज़रा से में मुँह मोड़ना नवकुमार का स्वभाव नहीं था। कुछ दूर ढोते थे, फिर कुछ देर बैठकर विश्राम करते थे, फिर ढोते थे, इस तरह आने लगे।

इस कारण से नवकुमार के आने में देर होने लगी। इधर साथी उनकी देर देखकर उद्विग्न होने लगे। उन्हें ऐसी आशङ्का हुई कि नवकुमार को बाघ पकड़ ले गया है। लौटने का कल्पित समय पार हो जाने पर उनके हृदय में ऐसा ही स्थिर सिद्धान्त हुआ। फिर भी किसी की ऐसी हिम्मत नहीं हुई कि किनारे चढ़कर कुछ दूर बढ़कर उनकी खोज करे।

नाव के आरोही इस तरह की कल्पना कर रहे थे, इसी बीच जलराशि में भैरव कल्लोल उठा। नाविक समझ गये कि ज्वार आ रहा है। नाविकों को अच्छी तरह मालूम था कि इन सब स्थानों में जलोच्छ्वास के समय किनारे पर तरङ्गों का ऐसा प्रचण्ड थपेड़ा लगता है कि नाव किनारे रहने पर टूक-टूक हो जाती है। इसलिए जल्दबाज़ी में नाव के बन्धन खोलकर वे उसे नदी के बीच में लाने

लगे। नाव खुलने न खुलते ही, सामने की रेती पानी में डूब गई। यात्रियों को त्रस्त भाव से नाव पर चढ़ने का अवकाश मिला था। चावल आदि जो कुछ खाद्य-सामग्री किनारे रक्खी गई थी, वह सब बह गई। दुर्भाग्य से नाविक बहुत निपुण नहीं थे, नाव को सँभाल नहीं सके। जल के प्रबल प्रवाह से नाव रसूलपुर की नदी से होकर बह चली। एक आरोही ने कहा, "नवकुमार जो रह गया!" एक नाविक ने कहा, "अरे, तुम्हारे नवकुमार क्या और हैं? उन्हें स्यार चट गये हैं।"

पानी का वेग नौका को रसूलपुर की नदी के भीतर लिये जा रहा है, लौटाने में बड़ी दिक्कत होगी, इसलिए नाविक प्राणपण से उसके बाहर आने की कोशिश करने लगे। यहाँ तक कि उस माघ के महीने में भी उनके ललाट से पसीने की बूँदें टपकने लगीं। इस प्रकार के परिश्रम से रसूलपुर की नदी के भीतर से नाव बाहर तो आने लगी, परन्तु वह ज्यों ही बाहर आई कि वहाँ के और भी प्रबल स्रोत से उत्तरमुखी होकर तीर की तरह बह चली। नाविक इस पर ज़रा भी रोक नहीं लगा सके। नाव फिर नहीं लौटी।

जब पानी का वेग इस प्रकार मन्द हो आया कि नाव की गति संयत की जा सके, तब यात्री रसूलपुर का सुहाना पार कर बहुत दूर आ गये थे। अब नवकुमार के लिए लौटा जायगा या नहीं, इस विषय की मीमांसा आवश्यक हुई। इस जगह कहना आवश्यक है कि नवकुमार के सहयात्री सिर्फ़ उनके पड़ोसी हैं, कोई उनके आत्मीय नहीं। उन लोगों ने विचार करके देखा कि वहाँ से लौटने के लिए एक और भाटा चाहिए। फिर रात हो जायगी और रात को नाव का चलना नहीं हो सकेगा, इसलिए दूसरे दिन के ज्वार की प्रतीक्षा करनी होगी। इस समय तक सबको भूखों रहना होगा। दो दिनों तक बिना खाये सब के प्राणों की आ

बनेगी। खास तौर से नाविक लौटने को असन्नद्ध हैं। वे बात माननेवाले नहीं। वे कह रहे हैं कि नवकुमार को बाघ पकड़ ले गया है। ऐसा ही होगा। फिर कितनी तकलीफ़ क्यों उठाई जाय?

इस तरह सोचकर नवकुमार के बिना भी स्वदेश लौटना यात्रियों ने उचित ठहराया। नवकुमार उस भीषण समुद्र के किनारे वनवास में विसर्जित हुए।

यह सुनकर अगर कोई प्रतिज्ञा करें कि कभी दूसरे का उपवास तोड़ने के इरादे लकड़ी लेने नहीं जायेंगे, तो वे पामर हैं, इन यात्रियों की ही तरह पामर हैं। अपना उपकार करनेवाले को वन में छोड़ देना जिनकी प्रकृति है, वे सदा उपकार करनेवाले को वनवास देंगे, परन्तु जितनी दफ़े भी वनवास दें, दूसरे के लिए लकड़ी लाना जिसका स्वभाव है, वह फिर दूसरे के लिए लकड़ी लेने जायगा। तुम अधम हो, इसलिए मैं उत्तम क्यों नहीं हूँगा?

तीसरा परिच्छेद

विजन में

" - Like a veil,
Which if withdrawn, would but disclose frown
Of one who hates us, so the night was shown
And grimly darken'd o'er their faces pale
And hopeless eyes."

—Don Juan.

जिस जगह नवकुमार को छोड़कर यात्री चले गये, उसके थोड़ी ही दूर पर दौलतपुर और दरियापुर नाम के दो छोटे गाँव इस समय दृष्ट होते हैं। परन्तु जिस समय की वर्णना में हम लगे हुए हैं, उस समय वहाँ मनुष्य की बस्ती का कोई चिह्न नहीं था, केवल जङ्गल था। परन्तु बङ्गाल में अन्यत्र भूमि जैसी सहज उर्वरा है, इस प्रदेश में वैसी नहीं। रसूलपुर के महाने से सुवर्णरेखा तक बिना बाधा के कई योजन रास्ता व्याप्त कर बालू के स्तूपों की एक श्रेणी विराज रही है। अगर ये स्तूप कुछ और ऊँचे होते तो इन्हें बालू के छोटे छोटे पर्वतों की श्रेणी कह सकते थे। इस समय लोग इसे 'बाली याड़ी' कहते हैं। बालीयाड़ी के इन सब धवल शिखरों की माला दुपहर की सूर्य किरणों में दूर से अपूर्व-प्रभावशालिनी देख पड़ती है। इस पर ऊँचे पेड़ नहीं पैदा होते। स्तूप के नीचे साधारण छोटे-छोटे वन बनते हैं। परन्तु बीच में या शिरोभाग में प्रायः छायाहीन धवल शोभा विराजती रहती है। नीचे घेरकर उगने-

वाले पेड़ों में सरपत, जङ्गली झाऊ और जङ्गली फूल ही अधिक हैं।

इस तरह की ख़ुश न कर सकनेवाली जगह नवकुमार साथियों से छोड़े गये। पहले वे लकड़ी का भार लेकर नदी के किनारे आये, नाव नहीं देखी, तब अकस्मात् उन्हें बड़ा डर लगा, परन्तु साथी उन्हें बिलकुल ही छोड़ गये हैं, ऐसा नहीं जान पड़ा। उन्होंने सोचा, ज्वार से रेती डूब जाने के कारण वे पास की किसी दूसरी जगह नाव लगाये हुए हैं, जल्द ये उन्हें खोज लेंगे। इस आशा से कुछ देर तक वहाँ बैठे हुए प्रतीक्षा करते रहे। परन्तु नाव नहीं आई। आरोही भी कोई नहीं देख पड़ा। नवकुमार भूख से बहुत व्याकुल हुए। और प्रतीक्षा नहीं कर सके। नाव की खोज में किनारे किनारे घूमते रहे। कहीं भी नाव का पता नहीं लगा। लौटकर पहली जगह आये। तब तक नाव न देखकर उन्होंने सोचा, ज्वार का वेग नाव को बहा ले गया है। अब उल्टे स्रोत में आते हुए साथियों को ख़ुद ब ख़ुद देर हो रही है। परन्तु ज्वार भी समाप्त हुआ। तब उन्होंने सोचा, उलटे स्रोत के अधिक वेग के कारण ज्वार में नाव नहीं लौट सकी, अब भाटे में अवश्य आती होगी। परन्तु क्रमशः भाटे का वेग भी बढ़ा, क्रमशः दिन ढल आया, सूर्य अस्त हो गया; अगर नाव लौटनेवाली होती तो अब तक लौट आती।

तब नवकुमार को विश्वास हुआ कि या तो जलोच्छ्वास के कारण तरङ्गों के थपेड़े खाकर नाव पानी में डूब गई है या साथी उन्हें इस विजन में छोड़कर चले गये हैं।

पहाड़ के नीचे चलनेवाले आदमी पर शिखर खण्ड टूट पड़ने पर जिस तरह उसे एक बार ही पीस डालता है, यह सिद्धान्त मन में आते ही नवकुमार का हृदय उसी तरह एक साथ दलमल गया

इस समय नवकुमार के मन की अवस्था जैसी हुई, उसकी वर्णना असाध्य है। साथी डूबकर जान से हाथ धो चुके होंगे, ऐसे सन्देह से उन्हें परिताप तो हुआ, परन्तु अपनी विपत्तिवाली बिना सहारे की अवस्था सोचकर वह शोक जल्द भूल गये। ख़ास तौर से जब याद आने लगा कि मुमकिन है, साथी परित्याग कर गये हों, तब क्रोध के वेग से शोक दूर होने लगा।

नवकुमार ने देखा, गाँव नहीं, आश्रय नहीं, आदमी नहीं, भोज्य नहीं, पेय नहीं; नदी का पानी बहुत ही खारा है; इधर भूख और प्यास से उनकी छाती फटी जा रही थी। घोर जाड़े के बचाव के लिए कोई आश्रय नहीं, बदन का कपड़ा तक नहीं। जाड़े की इस बहती बर्फ़ सी ठण्ढी हवा में नदी के किनारे, हिम बरसनेवाले आकाश के नीचे बिना आश्रय के, बिना कुछ ओढ़े, पड़ा रहना होगा। मुमकिन है, रात को बाघ या रीछ जान ले लें। आज न लें, कल लेंगे। प्राणों का नाश ही निश्चित है।

मन की चञ्चलता के कारण नवकुमार एक जगह देर तक नहीं बैठे रह सके। किनारा छोड़कर ऊपर चढ़े। इधर-उधर टहलने लगे। क्रमशः अंधेरा हुआ। शिशिर के आकाश में नक्षत्र-मण्डली चुपचाप विकसित होने लगी, जैसे नवकुमार के देश में विकसित होती है, वैसे खिलने लगी। अन्धकार में सब जगह निर्जनता है, आकाश में, प्रान्तर में, समुद्र में, सब जगह नीरवता है, केवल अविरल कल्लोलवाले समुद्र का गर्जन और कदाचित् वन्य पशुओं का रव सुन पड़ता है। फिर भी नवकुमार उस अंधेरे में, शीत बरसनेवाले आकाश के नीचे बालुकास्तूपों के चारों तरफ़ भ्रमण करते रहे। कभी उपत्यका में, कभी अधित्यका पर, कभी स्तूप के नीचे, कभी स्तूप-शिखर पर भ्रमण करते रहे। चलते-चलते पद-पद पर हिंस्र पशु के आक्रमण की सम्भावना है, परन्तु एक जगह बैठे रहने पर भी वह डर है।

घूमते-घूमते नवकुमार थक गये। सारा दिन बिना खाये हुए हैं। इससे और भी अवसन्न हो गये। एक जगह बालीयाड़ी के पार्श्व में पीठ लगाकर बैठे। घर की सुखतल शय्या याद आई। जब शारीरिक और मानसिक कष्ट की थकान में चिन्ता आती है, तब कभी कभी नींद भी साथ-साथ आती है। नवकुमार सोचते-सोचते नींद में डूब गये। अगर ऐसा नियम न होता तो शायद सांसारिक क्लेशों के अप्रतिहत वेग सभी सब समय न सह सकते।

चौथा परिच्छेद

स्तूप-शिखर पर

"——सविस्मये देखिला अदूरे
भीषण-दर्शन मूर्ति।"

मेघनाद-वध

जब नवकुमार की आँख खुली तब रात गहरी थी। अभी तक उन्हें बाघ का शिकार नहीं होना पड़ा, यह उनके लिए तअज्जुब की बात हुई। इधर-उधर निगाह दौड़ाकर देखने लगे, बाघ आ रहा है या नहीं। अकस्मात् सामने काफी दूर एक प्रकाश देखा। कहीं भ्रम न हुआ हो, इसलिए नवकुमार मन को एकाग्र कर उसकी तरफ देखने लगे। प्रकाश की परिधि क्रमशः बढ़ती हुई और उज्ज्वलतर होने लगी—यह आग का प्रकाश है, उन्हें विश्वास हुआ। विश्वास होते ही नवकुमार के जीने की आशा फिर उद्दीप्त हो उठी। बिना आदमी के रहे इस प्रकाश का होना सम्भव नहीं। नवकुमार उठे; जिधर प्रकाश है, उसी तरफ बढ़े। एक बार मन में सोचा, "यह प्रकाश भूतों का है?—हो भी सकता है; परन्तु शङ्का से निरस्त रहने पर भी कहाँ जान बचती है?" यह सोचकर निर्भीक चित्त से प्रकाश को लक्ष्य करके चले। पेड़, लता, बालू के स्तूप, पद पद पर उनकी गति रोकने लगे। पौधे और लताएँ रौंदकर, बालू के स्तूप लाँघकर नवकुमार चले। प्रकाश के पास आकर देखा कि बालू के एक बहुत ऊँचे स्तूप के शिरोभाग पर आग जल रही है। उसके उजाले में

शिखर पर बैठे मनुष्य की मूर्ति आकाश-पट के चित्र की तरह देख पड़ रही है। नवकुमार शिखर पर बैठे मनुष्य के पास जायँगे, यह सङ्कल्प निश्चित कर बिना कुछ भी ढीले पड़े हुए चले। अन्त में शिखर पर चढ़ने लगे। तब कुछ शङ्का होने लगी, फिर भी अकम्पित पदों से स्तूप पर चढ़ने लगे। बैठे हुए व्यक्ति के सामने आकर जो जो कुछ देखा, उससे उन्हें रोमाञ्च हुआ। ठहरेंगे या लौटेंगे, यह निश्चित नहीं कर सके।

शिखर पर बैठा आदमी आँखें मूँदकर ध्यान कर रहा था। पहले नवकुमार को नहीं देखा। नवकुमार ने देखा, उसकी उम्र प्रायः पचास साल की होगी। कपास का कोई वस्त्र वह पहने हुए है या नहीं, यह नहीं नज़र आया। कटि से जाँघ तक बाघाम्बर से आवृत है। गले में रुद्राक्ष की माला। आयत मुखमण्डल दाढ़ी-मूँछ और जटाओं से घिरा है। सामने लकड़ी की आग जल रही है। उसी आग की लपटें देखते हुए नवकुमार वहाँ तक जा सके थे। नवकुमार को एक विकट दुर्गन्ध मिलने लगी। इसके आसन की तरफ़ निगाह डालकर इसका कारण समझे। जटाधारी एक छिन्नमस्तक गलित शव पर बैठे हुए है। अब मैं और भी देखा, सामने नर-कपाल रक्खा है, उसमें रक्तवर्ण द्रवपदार्थ रक्खा है। चारों तरफ़ जगह जगह हाड़ पड़े हुए हैं। यहाँ तक कि योग में बैठे व्यक्ति के गले की रुद्राक्ष की माला के बीच-बीच में हाड़ के छोटे-छोटे टुकड़े पिरोये हुए हैं। नवकुमार मन्त्रमुग्ध हो गये। आगे बढ़ें या जगह छोड़ दें, समझ नहीं सके। उन्होंने कापालिकों की कथाएँ सुनी थीं। समझे कि यह व्यक्ति घोर कापालिक है।

जब नवकुमार पहुँचे थे, तब कापालिक मन्त्र की साधना में, या जप में, या ध्यान में मग्न था। नवकुमार को देखकर ज़रा भी

परवा नहीं की। बड़ी देर बाद पूछा, "कस्त्वम्?" नवकुमार ने कहा, "ब्राह्मण।"

कापालिक "तिष्ठ" कहकर पत्ते के काम में लगा। नवकुमार खड़े रहे।

इस तरह आधा पहर बीत गया। इसके बाद कापालिक उठा और पहले की तरह नवकुमार से संस्कृत में कहा, "मामनुसर।"

यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि दूसरे समय नवकुमार कदापि इसके साथी न होते; परन्तु इस समय भूख और प्यास से प्राण ओष्ठागत हो रहे थे, इसलिए कहा, "प्रभु की जैसी आज्ञा। परन्तु मैं भूख और प्यास से बहुत विकल हूँ, कहाँ जाने पर भोजन प्राप्त होगा, आज्ञा कीजिए।"

कापालिक ने कहा, "तुम भैरवी के भेजे हुए हो, मेरे साथ आओ, भोजन प्राप्त कर सकोगे।"

नवकुमार कापालिक के पीछे-पीछे चले। दोनों ने लम्बा रास्ता पार किया। रास्ते में कोई किसी से बोला नहीं। अन्त में एक पर्णकुटीर मिली; कापालिक पहले भीतर गया, फिर नवकुमार को भीतर जाने की आज्ञा दी, और नवकुमार के न जाने हुए किसी उपाय से एक चैले में आग जलाई। उसके उजाले में नवकुमार ने देखा वह कुल कुटी केवड़े के पत्तों से छाई है। उसके भीतर कई व्याघ्र-चर्म हैं। एक घड़ा जल और कुछ फल-मूल है।

आग जलाकर कापालिक ने कहा, "फल-मूल जो कुछ है, भोजन कर सकते हो। पत्ते का दोना बनाकर कलस का पानी पीना। व्याघ्र-चर्म है, इच्छा होने पर सोना। कोई विघ्न नहीं, रहो; बाघ का डर न करना। दूसरे वक्त मुझसे मुलाक़ात होगी। जब तक मुलाक़ात न हो, तब तक यह कुटी छोड़ना मत।"

यह कहकर कापालिक चला गया। नवकुमार वह थोड़ा सा फल-मूल खाकर कुछ कुड़ुआ वह पानी पीकर परम परितृप्त हुए। इसके बाद बाघ की खाल पर लेटे। सारे दिन की थकावट के कारण जल्द ही गहरी नींद में आ गये।

पाँचवाँ परिच्छेद

समुद्र-तट पर

".....योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते।
"बिभर्षि चाकारमनिर्वृताना मृणालिनी हैममिवोपरागम् ॥"

—रघुवंश।

सुबह को उठकर नवकुमार सहज ही घर चलने के उपाय में व्यस्त हुए। ख़ास तौर से कापालिक का यह साथ किसी तरह भी श्रेयस्कर नहीं मालूम दिया। परन्तु फ़िलहाल इस पथहीन वन के भीतर से निकलेंगे किस तरह? किस तरह रास्ता पहचानकर घर भी जायँगे? कापालिक अवश्य रास्ता जानता है; पूछने पर क्या बता नहीं देगा? विशेषतः जहाँ तक देखा गया है, वहाँ तक कापालिक ने उनके प्रति कोई शंकासूचक आचरण नहीं किया। क्यों फिर वे डरते हैं? इधर कापालिक ने दूसरी मुलाक़ात न होने तक कुटी छोड़ने को मना किया है। उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ चलने पर मुमकिन है, उसे ग़ुस्सा आये। नवकुमार ने सुन रक्खा था कि मन्त्र के बल से कापालिक लोग असाध्य-साधन कर सकते हैं। इस कारण उसका अवाध्य होना अनुचित है। इस तरह के विचार लड़ाकर फ़िलहाल कुटीर में रहने का ही नवकुमार ने निश्चय किया।

परन्तु क्रमशः दिन ढलने लगा, फिर भी कापालिक नहीं लौटा। पहले दिन का उपास, आज अब तक अनशन, इससे भूख प्रबल हो उठी। कुटी में जो थोड़े से फल-मूल थे, वे पिछली रात को ही

खाये जा चुके थे। अब कुटी छोड़कर फल-मूल की खोज न करने पर भूख से जान की पड़ रही है। कुछ दिन रहते भूख की ताड़ना से नवकुमार फलों की खोज में बाहर निकले।

नवकुमार फल खोजते हुए पास के बालुका-स्तूपों के चारों ओर घूमने लगे। जो दो-एक पेड़ बालू में उगते हैं, उनके फलों को चखकर देखा, एक पेड़ के फल बादाम की तरह के बड़े स्वाददार हैं। वे फल खाकर उन्होंने भूख मिटाई।

कहीं हुई बालू की स्तूप-श्रेणी चौड़ाई में बहुत कम है। अतएव नवकुमार ने कुछ देर तक भ्रमण कर उसे पार किया। इसके बाद बालुकाहीन निविड़ वन में पड़े। जो लोग न पहचाने रास्तों के बन में कुछ काल के लिए भी भ्रमण कर चुके हैं, वे जानते हैं कि बिना रास्तों के वन में क्षण भर में पथ-भ्रान्ति होती है। नवकुमार के लिए वैसा ही हुआ। कुछ दूर आकर, आश्रम किस तरफ़ छोड़ आये हैं, इसका निश्चय नहीं कर सके। गम्भीर जल-कल्लोल उनके कानों में पैठा। वे समझे कि यह समुद्र-गर्जन है। कुछ देर बाद वन से बाहर निकलकर अकस्मात् देखा, सामने ही समुद्र है। अनन्त-विस्तार नीलाम्बुमण्डल सामने देखकर उत्कट आनन्द से हृदय पूर्ण हो गया है। वे सिकतामय तट पर जाकर बैठे। फेनिल, नील, अनन्त समुद्र। दोनों तरफ़ जितनी दूर आँखें जाती हैं, उतनी दूर तक तरङ्ग-भङ्गों से प्रक्षिप्त फेन की रेखा है, राशि-राशि विमल कुसुमों की गूँथी माला की तरह वह धवल फेनरेखा सोने की सिकताभूमि पर पड़ी हुई है। कानन-कुन्तला पृथ्वी का योग्य अलकाभरण जैसे हो। नीले जल के भीतर हज़ारों जगह फेनों के साथ तरङ्ग-भङ्ग हो रहे हैं। यदि कभी ऐसी प्रचण्ड आँधी का चलना सम्भव हो कि उसके वेग से हज़ारों नक्षत्र स्थानच्युत होकर नीले आकाश में डोलते रहें, तो उस सागर-तरङ्ग-क्षेप का स्वरूप देख पड़ सकता है। इस

समय अस्तगामी सूर्य की मृदुल किरणों से नील जल का एक अंश द्रवीभूत सुवर्ण की तरह जल रहा है। बहुत दूर किसी यूरोपीय वणिक् का समुद्र-पोत श्वेत पक्ष फैलाकर, बृहत् पक्षी की तरह, जलधि के हृदय में उड़ रहा है।

कितनी देर तक नवकुमार किनारे बैठे हुए अनन्य मन से जलधि की शोभा देखते रहे, इस सम्बन्ध में उस समय वे परिमाण-बोध-रहित थे। बाद को एक साथ प्रदोष का अँधेरा आकर काले पानी के ऊपर बैठा। तब नवकुमार को होश हुआ कि आश्रम की खोज कर लेनी है। एक लम्बी साँस छोड़कर उठे। लम्बी साँस क्यों छोड़ी, यह हम नहीं बतला सके—तब उनके मन में किस भूतपूर्व सुख का उदय हो रहा था, कौन कहेगा? उठकर समुद्र की तरफ़ पीठ की। फिरते ही एक अपूर्व मूर्ति देखी।—उस गम्भीर नाद करनेवाले समुद्र के किनारे, सैकतभूमि पर सन्ध्या के अस्पष्ट प्रकाश में खड़ी अपूर्व रमणी-मूर्ति। केशभार—वेणी न बँधी हुई, साँप जैसे लहराते बाल; राशीकृत, एड़ी तक पहुँचते हुए; बालों के सामने देह-रत्न; जैसे चित्रपट पर चित्र देख पड़ रहा है। अलकावली की प्रचुरता के कारण मुखमण्डल पूर्ण रूप से नहीं देख पड़ रहा, फिर भी मेघों के हट जाने से निकली हुई चाँद की किरणों की तरह प्रतीत हो रहा है। विशाल आँखों में कटाक्ष हैं, बहुत स्थिर, बहुत स्निग्ध, बहुत गम्भीर अथच ज्योतिर्मय। वे कटाक्ष इस सागर के हृदय पर क्रीड़ा करनेवाली चन्द्र-किरण-लेखा की जैसी स्निग्धोज्ज्वल दीप्ति पा रहे थे। केश-राशि ने दोनों कन्धों और बाँहों को ढँक लिया था। कन्धे बिलकुल नहीं देख पड़ते; बाहुओं की विमल श्री कुछ-कुछ देख पड़ती थी। रमणी की देह बिलकुल निराभरण थी। मूर्ति के भीतर जो एक मोहिनी शक्ति थी, उसकी वर्णना नहीं की जा सकती। अर्द्ध चन्द्र से निकलती हुई कौमुदी का रङ्ग, घने-काले केशजाल; एक

दूसरे के मिलाप से वर्ण और चिकुर दोनों को जो श्री विकसित हो रही थी, वह गम्भीर नाद करनेवाले उस समुद्र के किनारे सन्ध्यालोक न देखने पर नहीं समझ में आ सकती, न उसकी मोहिनी शक्ति अनुभूत हो सकती है।

नवकुमार अकस्मात् ऐसी दुर्गमता में देवीमूर्ति देखकर निःस्पन्द-शरीर होकर खड़े रहे। उनकी वाक्शक्ति रहित हो गई। स्तब्ध होकर देखते रहे। रमणी भी स्पन्दहीन थी। विशाल आँखों की स्थिर दृष्टि नवकुमार के मुख पर न्यस्त कर रक्खी। दोनों के देखने में भेद इतना ही है कि नवकुमार की दृष्टि चकित हुए आदमी की जैसी है, रमणी की दृष्टि में कोई वह लक्षण नहीं, परन्तु उसमें विशेष रूप से उद्वेग स्पष्ट हो रहा था।

अस्तु, समुद्र के निर्जन तट पर इस तरह दोनों देर तक एक दूसरे को देखते रहे। बहुत देर बाद तरुणी का कण्ठस्वर सुन पड़ा। उन्होंने बड़े ही मृदुल स्वर से पूछा, "पथिक, क्या तुम राह भूल गये हो?"

ऐसे कण्ठस्वर के साथ नवकुमार की हृदयवीणा बज उठी। विचित्र इस हृदय-यन्त्र की तन्त्रियाँ समय-समय पर ऐसी लयहीन हो रहती हैं कि जितना भी यत्न किया जाय, किसी तरह एक दूसरी से मिलती नहीं; परन्तु एक शब्द से, रमणी-कण्ठ से निकले एक स्वर से संशोधित हो जाती हैं; सब लययुक्त हो जाती हैं, संसार-यात्रा उसी समय से सुखमय सङ्गीत-प्रवाह मालूम देती है। नवकुमार के कानों में उसी तरह यह ध्वनि बजी।

"पथिक, क्या तुम राह भूल गये हो?" यह ध्वनि नवकुमार के कानों में पैठी। क्या अर्थ है, क्या उत्तर देना चाहिए, कुछ भी समझ में नहीं आया। ध्वनि जैसे हर्ष से काँपती हुई फिरने लगी; जैसे हवा में वही ध्वनि बही; पेड़ों के पत्तों में मर्मरित होने लगी;

सागर-नाद में जैसे मन्दीभूत होने लगी। सागर-वसना पृथ्वी सुंदरी है; रमणी सुन्दरी है; ध्वनि भी सुंदरी है। हृदय की तन्त्री में सौन्दर्य की लय उठने लगी।

कोई उत्तर न पाकर रमणी ने कहा, "आओ।" यह कहकर तरुणी चली, पदक्षेप निगाह में नहीं आते। वसन्त में धीमी हवा से चालित शुभ्र मेघ की तरह धीरे-धीरे अलक्ष्य पदक्षेप से चली। नवकुमार कल के पुतले की तरह साथ साथ चले। एक जगह एक छोटा वन घूमना पड़ा। वन के अन्तराल में जाने पर फिर सुन्दरी को नही देखा। वन का चक्कर घूमकर देखा, सामने कुटी थी।

छठा परिच्छेद

कापालिक के साथ

"कथं निगडसंयतामि द्रुतम्
नयामि भवतीमितः—"

—रत्नावली

नवकुमार कुटी के भीतर जाकर द्वार बन्द कर हथेली पर सर रखकर बैठे। फिर जल्दी सर नहीं उठाया।

"क्या यह देवी है, या मानवी है, या कापालिक की केवल माया है?" नवकुमार निःस्पन्द होकर इस विषय का आन्दोलन करते रहे। कुछ भी नहीं समझ सके।

अन्यमनस्क थे, इसलिए नवकुमार एक दूसरा व्यापार नहीं देख पाये। उसी कुटी में उनके आने से पहले से एक चैला जल रहा था, बाद को काफ़ी रात बीतने पर जब याद आया कि सायंकृत्य असमाप्त है, तब पानी की खोज में चिन्ता से निवृत्त होकर इस विषय की असम्भवता हृदयङ्गम कर सके। केवल प्रकाश नहीं, चावल आदि पाकोपयोगी कुछ-कुछ सामग्री भी है। नवकुमार भूले नहीं, सोचा यह भी कापालिक का काम है, इस जगह विस्मय का विषय क्या है?

"शस्यञ्च गृहमागतम्" बुरी बात नहीं। "भोज्यञ्च उदरागतम्" कहने पर बात और भी साफ़ हो जाती है। नवकुमार इस कथन का माहात्म्य नहीं समझते थे, ऐसी बातें नहीं। सायंकृत्य समाप्त कर

कुटी में पाये हुए मिट्टी के एक पात्र में चावल उबालकर भोजन किया।

दूसरे दिन सुबह को चर्मशय्या से उठकर ही समुद्र के किनारे चले। पिछले दिन आने जाने के कारण आज कुछ ही तकलीफ़ से रास्ता मालूम कर लिया। प्रातःकृत्य समाप्त करके प्रतीक्षा करने लगे। किसकी प्रतीक्षा करने लगे? पहले की दिखी मायाविनी फिर इस जगह आयेगी, ऐसी आशा नवकुमार के हृदय में कहाँ तक प्रबल हुई थी, हम नहीं कह सकते, परन्तु वह जगह वे छोड़ नहीं सके। काफ़ी दिन चढ़ आने पर भी वहाँ कोई नहीं आया। तब नवकुमार उस जगह के चारों ओर चक्कर लगाने लगे। वृथा अन्वेषण था। मनुष्य के आने का चिह्न तक नहीं देख पड़ा। फिर लौटकर उसी जगह आकर बैठे। सूर्य अस्त हुआ। अँधेरा हो आने लगा। नवकुमार हताश होकर कुटी लौट आये। शाम को समुद्र के किनारे से लौटकर नवकुमार ने देखा कि कापालिक कुटी में धरातल पर चुपचाप बैठा हुआ है। नवकुमार ने पहले स्वागत-सम्बोधन किया, इसका कापालिक ने कोई उत्तर नहीं दिया। नवकुमार ने कहा, "अब तक प्रभु के दर्शनों से मैं क्यों वंचित रहा?" कापालिक ने कहा, "मैं अपने व्रत में नियुक्त था।"

नवकुमार ने घर जाने की इच्छा व्यक्त की। कहा, "रास्ता मालूम नहीं, राह-ख़र्च भी नहीं; जो कुछ होना चाहिए, प्रभु के दर्शनों से होगा, इसी भरोसे पर हूँ।"

कापालिक ने सिर्फ़ कहा, "मेरे साथ आओ।" यह कहकर उदासीन उठकर खड़े हो गये। घर जाने का कोई उत्तम उपाय होगा, इस आशा से नवकुमार उनके पीछे-पीछे चले।

तब तक सन्ध्या का प्रकाश तिरोहित नहीं हुआ। कापालिक आगे-आगे, नवकुमार पीछे-पीछे जा रहे थे। अकस्मात् नवकुमार

की पीठ में किसी का कोमल कर स्पर्श हुआ। पीछे फिरकर जो कुछ देखा, उससे स्पन्दहीन हो गये। वही एड़ी तक लम्बे घने केशों-वाली वन्य देवी-मूर्ति थी, पहले की तरह निःशब्द, निःस्पन्द। कहाँ से यह मूर्ति एकाएक उनके पीछे आई! नवकुमार ने देखा, रमणी मुँह में उँगली लगाये हुए है। नवकुमार समझ गये कि रमणी बोलने को मना कर रही है। निषेध की वैसी आवश्यकता भी नहीं थी। नवकुमार कौन-सी बातचीत करेंगे? वे वहाँ चमत्कृत होकर खड़े हो गये। कापालिक यह सब नहीं देख पाया। आगे बढ़ता चला गया। उदासीन के सुनने से दूर होने पर रमणी ने मधुर स्वर से कुछ कहा। नवकुमार के कानों में ये शब्द आये—"कहाँ जा रहे हो? मत जाओ। लौट जाओ—भागो।"

यह बात समाप्त करके ही उक्तिकारिणी हट गई, उत्तर सुनने के लिए नहीं रुकी। नवकुमार कुछ देर तक अभिभूत हुए जैसे खड़े रहे, पीछे लौटने के लिए व्यग्र हुए, परन्तु रमणी किस ओर गई, इसका कुछ निश्चय न कर पाकर मन ही मन कहने लगे, "यह किसी की माया है या मुझे ही भ्रम हो रहा है? जो बात सुनी, वह तो आशंका सूचित करती है; लेकिन किस बात की आशंका? तान्त्रिक लोग सब कुछ कर सकते हैं। तो क्या भागूँ? कहाँ भागने की जगह है?

नवकुमार इस तरह की चिन्ता कर रहे थे, ऐसे समय देखा, कापालिक उन्हें साथ आता हुआ न देखकर लौट रहा है। कापालिक ने कहा, "देर क्यों कर रहे हो?"

जब आदमी अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर पाता, तब वह पहले जिस ओर प्रेरित किया जाता है, उसी ओर जाता है। कापालिक के फिर से बुलाने पर बिना एक बात कहे नवकुमार उसके पीछे-पीछे चले।

कुछ दूर जाने पर मिट्टी की चारदीवार से घिरी एक कुटी देख पड़ी। उसे कुटी भी कह सकते हैं, छोटा गृह भी कह सकते हैं। परन्तु इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं। इसके पीछे ही सिकतामय समुद्रतीर है। गृह की बग़ल से कापालिक नवकुमार को उसी सैकत में ले चले। ऐसे समय तीर की गति से वह पहले दिखी रमणी उनकी बग़ल से निकल गई। जाती हुई उनके कान में कह गई, "अब भी भागो। नरमांस के बिना तान्त्रिक की पूजा नहीं होती, क्या तुम नहीं जानते ?"

नवकुमार के ललाट पर पसीना निकलने लगा। दुर्भाग्य से युवती की यह बात कापालिक के कान में गई। उसने कहा, "कपाल-कुण्डले।"

वह स्वर नवकुमार के कानों में मेघगर्जन की तरह ध्वनित हुआ। परन्तु कपालकुण्डला ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कापालिक नवकुमार का हाथ पकड़कर ले जाने लगा। मनुष्य-घाती के कर-स्पर्श से नवकुमार का ख़ून नसों में सौ-गुना अधिक वेग से बहने लगा, लुप्त हुआ साहस फिर लौटा। कहा, "हाथ छोड़िए।"

कापालिक ने जवाब नहीं दिया। नवकुमार ने फिर पूछा, "मुझे कहाँ ले जा रहे हैं ?"

कापालिक ने कहा, "पूजा की जगह।"

नवकुमार ने पूछा, "क्यों ?"

कापालिक ने कहा, "वधार्थ।"

बड़े तीव्र वेग से नवकुमार ने अपना हाथ खींचा। जिस बल से उन्होंने हाथ खींचा था, उससे साधारण आदमी अगर उनका हाथ पकड़े होता, तो हाथ छुड़ाना तो दूर, वह ज़मीन पर गिर जाता। लेकिन कापालिक की देह तक नहीं हिली। नवकुमार की कलाई

उनकी मुट्ठी में ही रही। नवकुमार के हाड़ों के कुल जोड़ जैसे अलग हो गये। अधमरे की तरह नवकुमार कापालिक के साथ-साथ चले।

सैकत-भूमि के बीचोबीच ले जाये जाकर नवकुमार ने देखा, पहले दिन की तरह वहाँ एक बड़े-से लक्कड़ में आग जल रही है। चारों ओर तान्त्रिक पूजा के आयोजन हैं। उनमें नरकपाल में भरा आसव है परन्तु शव नहीं। अनुमान किया, उन्हें ही शव होना होगा।

कुछ सूखे मज़बूत लता-गुल्म वहाँ पहले से एकत्र किये हुए थे। कापालिक उनसे नवकुमार को कसकर बाँधने लगा। नवकुमार ने भरसक अपना ज़ोर लगाया, परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ। उन्हें विश्वास हुआ कि इस उम्र में भी कापालिक मतवाले हाथी का बल रखता है। नवकुमार का ज़ोर लगाना देखकर कापालिक ने कहा, "मूर्ख! किस लिए बलप्रकाश करते हो? तुम्हारा जन्म आज सार्थक हुआ। भैरवी की पूजा में तुम्हारा यह मांसपिण्ड अर्पित होगा। इससे अधिक तुम्हारे जैसे मनुष्य का और कौनसा सौभाग्य हो सकता है?"

नवकुमार को अच्छी तरह बाँधकर कापालिक ने बालू पर डाल रक्खा और वध की प्रारम्भिक पूजा में नियुक्त हुए।

सूखी लता बड़ी मज़बूत थी और बन्धन बड़ा दृढ़। मृत्यु निकट है। नवकुमार ने इष्ट देवता के चरणों पर चित्त को निविष्ट किया। एक बार जन्मभूमि याद आई, अपना सुख का भवन याद आया, एक बार बहुत दिन के गुज़रे पिता और माता के मुँह याद आये, दो-एक बूँद आँसू बालू में सूख गये। बलि की प्रारम्भिक क्रिया समाप्त कर कापालिक वध के लिए खड्ग लेने को आसन छोड़कर उठा। परन्तु जहाँ खड्ग रक्खा था, वहाँ खड्ग नहीं पाया।

आश्चर्य ! कापालिक कुछ विस्मित हुआ। उसके मन में निश्चय हो रहा था कि तीसरे पहर खड्ग लाकर यथास्थान उसने रक्खा था और उसे स्थानान्तरित नहीं किया। फिर खड्ग कहाँ गया ? कापालिक ने इधर-उधर खोजा, लेकिन कहीं भी नहीं पाया। तब पहले कही हुई कुटी की तरफ़ मुँह करके कपालकुण्डला को आवाज़ दी; परन्तु बार बार बुलाने पर भी कपालकुण्डला ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब कापालिक की आँखें लाल और भौंहें कुञ्चित हुईं। द्रुतपद से गृह की तरफ़ चला। इस अवकाश में लता के बन्धन तोड़ने का नवकुमार ने एक बार और प्रयत्न किया, परन्तु वह प्रयत्न भी निष्फल हुआ।

इस समय पास बालू पर बड़ी कोमल पदध्वनि हुई। यह पदध्वनि कापालिक की नहीं थी। नवकुमार ने आँखें फेरकर देखा—वही मोहिनी, कपालकुण्डला है। उसके हाथ में खड्ग झूम रहा है।

कपालकुण्डला ने कहा, "चुप ! बातें न करना। खड्ग मेरे ही पास है। चुरा रक्खा है।"

यह कहकर कपालकुण्डला बहुत जल्दी-जल्दी नवकुमार के लताबन्धन खड्ग से काटने लगी। निमेषमात्र में उन्हें मुक्त कर दिया। कहा, "भागो, मेरे पीछे-पीछे आओ, रास्ता बता देती हूँ।"

यह कहकर कपालकुण्डला तीर की गति से रास्ता दिखाती हुई चली। नवकुमार उछलकर उसके पीछे-पीछे दौड़े।

——

सातवाँ परिच्छेद

अन्वेषण

"And the great lord of Luna
Fell at that deadly stroke :
As falls on mount Alvernus
A thunder-smitten oak."

—Lays of Ancient Rome.

इस तरफ़ कापालिक गृह के भीतर एक-एक कोना खोजकर, न खड्ग और न कपालकुण्डला को पाकर, सन्दिग्ध चित्त से सैकत-भूमि में लौट आया। वहाँ आकर देखा कि नवकुमार वहाँ नहीं हैं। इससे उसे बड़ा विस्मय हुआ। कुछ देर बाद ही छिन्न लतावन्धन पर निगाह गई। तब इसका स्वरूप समझकर, कापालिक नवकुमार की खोज में दौड़ा। परन्तु एकान्त में पलातक किस तरफ़ किस रास्ते गये हैं, इसका निश्चय करना दुःसाध्य है। अँधेरे के कारण किसी पर भी उसकी निगाह नहीं गई। इसलिए बातचीत के शब्द का लक्ष्य कर देर तक इधर-उधर भ्रमण करता रहा। परन्तु सब समय गले की आवाज़ भी नहीं सुन पड़ी। इसलिए विशेष रूप से निरीक्षण करने के अभिप्राय से बालू के एक ऊँचे शिखर पर चढ़ा। कापालिक एक तरफ़ से चढ़ा, उसके दूसरी तरफ़ वर्षा के जल-प्रवाह से स्तूप का तलदेश कट गया था, यह उसे मालूम नहीं

था। शिखर पर आरोहण करते ही कापालिक के शरीर के भार से वह पतनोन्मुख स्तूप-शिखर बड़े घोर रव से धराशायी हो गया। स्तूप के धराशायी होते वक्त, पर्वत के शिखर से गिरे भैंसे की तरह कापालिक भी उसके साथ गिर गया।

——

आठवाँ परिच्छेद

आश्रम में

" And that very night—
Shall Romeo bear thee to Mantua."

—**Romeo and Julie.**

अमावस की उस घोर अँधेरी रात में दोनों ऊर्ध्व श्वास से वन के भीतर बैठे। जङ्गली रास्ते नवकुमार के जाने हुए नहीं थे। केवल साथ चलनेवाली षोडशी को देखते हुए उसके क़दम पर क़दम रखकर चलने के सिवा उनके लिए दूसरा उपाय नहीं था। परन्तु अँधेरे में वन के भीतर रमणी सब समय नही देख पड़ सकती; युवती एक तरफ़ दौड़ती थी तो नवकुमार दूसरी तरफ़ जाते थे। रमणी ने कहा, "मेरा आँचल पकड़ो।" नवकुमार उसका आँचल पकड़कर चले। क्रमशः वे लोग पदक्षेप मन्द करते हुए चले। अँधेरे में कुछ भी नहीं नज़र आता था; सिर्फ़ कभी कहीं किसी नक्षत्र के प्रकाश से किसी वालुका-स्तूप का शुभ्र शिखर देख पड़ता था, कहीं जुगनुओं से घिरे वृक्ष का आकार दृष्टिगोचर होता था।

कपालकुण्डला पथिक को साथ लेकर निभृत अरण्य के भीतर पहुँची। तब रात का दूसरा पहर था। सामने अँधेरे में वन के भीतर एक बहुत ऊँचे देवालय का शिखर देख पड़ा। उसके पास ईंटों की चारदीवारी से घिरा एक घर भी देख पड़ा। कपालकुण्डला चारदीवार के द्वार के पास जाकर उसमें थपकियाँ देने लगी।

बार-बार कराघात करने पर एक व्यक्ति ने भीतर से कहा, "कौन हो, कपालकुण्डला हो शायद?" कपालकुण्डला ने कहा, "दरवाज़ा खोलो।"

पूछनेवाले ने आकर द्वार खोल दिया। जिस व्यक्ति ने द्वार खोला वह उस देवालय की अधिष्ठात्री देवी का सेवक या अधिकारी है। उम्र मे, पचास साल पार कर गया होगा। कपालकुण्डला उसके विरल केशवाले मस्तक को हाथ से झुकाकर अपने अधर के पास उसके कान ले आई और दो-चार शब्दों में अपने साथी की अवस्था समझा दी।

अधिकारी बहुत देर तक सर हथेली पर लिये सोचते रहे। बाद में कहा, "यह बड़ा विषम व्यापार है। महापुरुष चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं। जो कुछ हो, माँ के प्रसाद से तुम्हारा अमङ्गल नही होगा। वह आदमी कहाँ है?"

"आओ" कहकर कपालकुण्डला ने नवकुमार को बुलाया। नवकुमार आड में खड़े थे, बुलाये जाकर घर के भीतर गये। अधिकारी ने उससे कहा, "आज यहीं छिपे रहो, कल सुबह तुम्हें मेदिनीपुर के रास्ते छोड़ आऊँगा।"

बात ही बात से अधिकारी क्रमशः समझे कि नवकुमार का अभी तक भोजन नही हुआ। इसमे अधिकारी उनके भोजन के इन्तज़ाम में लगे लेकिन नवकुमार ने यह प्रार्थना की कि भोजन की उन्हें बिलकुल इच्छा नहीं, वे सिर्फ़ विश्राम चाहते हैं। अधिकारी ने अपनी रसोई में नवकुमार के सोने के लिए बिस्तर लगा दिया। नवकुमार के लेटने पर कपालकुण्डला समुद्र के किनारे लौटने का उद्योग करने लगी। उस पर स्नेह की दृष्टि डालते हुए अधिकारी ने कहा, "जाना मत। कुछ ठहरो। एक भीख माँगता हूँ।"

कपालकुण्डला—क्या?

अधिकारी—जब से तुम्हें देखा है, तुम्हें माँ कहता हूँ। देवी के चरण छूकर शपथ कर सकता हूँ कि तुम्हें माता से अधिक स्नेह करता हूँ। मेरी भीख की अवहेला तो नहीं करोगी ?

कपालकुण्डला—नहीं करूँगी।

अधि०—मेरी यही भिक्षा है कि तुम वहाँ अब लौट न जाना।

कपा०—क्यों ?

अधि०—जाने पर तुम्हारी रक्षा नहीं होगी।

कपा०—यह तो जानती हूँ।

अधि०—तो फिर और पूछती क्यों हो ?

कपा०—न जाकर कहाँ जाऊँगी ?

अधि०—इसी पथिक के साथ दूसरे देश चली जाओ।

कपालकुण्डला नीरव हो रही। अधिकारी ने पूछा—माँ, क्या सोच रही हो ?

कपा०—जब तुम्हारा शिष्य आया था, तब तुमने कहा था कि युवती का इस तरह युवा पुरुष के साथ जाना अनुचित है; अब जाने को क्यों कह रहे हो ?

"तब तुम्हारे जीवन की शंका नहीं की। ख़ास तौर से जिस विशद उपाय की सम्भावना नहीं थी, अब उसकी है; आओ, माता की आज्ञा ले आयें।" यह कहकर, दिया हाथ में ले, अधिकारी ने मन्दिर का द्वार खोला। कपालकुण्डला भी उनके साथ-साथ गई। मन्दिर में आदमी के बराबर की कराल काली-मूर्ति स्थापित थी। दोनों ने भक्ति-भाव से प्रणाम किया। आचमन करके अधिकारी ने पुष्पपात्र से एक न टूटा हुआ बिल्वपत्र लेकर मन्त्रपूत किया और उसे प्रतिमा के पैर पर रखकर उसकी तरफ़ देखते रहे। कुछ देर बाद अधिकारी ने कपालकुण्डला से कहा—"माँ, देखो, देवी ने अर्घ्य ग्रहण किया

है, बिल्वपत्र गिरा नहीं; जिस कामना से अर्घ्य दिया था, उसमें अवश्य मङ्गल है। तुम इस पथिक के साथ स्वच्छन्दता से जाओ। परन्तु मैं विषयी मनुष्य की रीतियाँ और चरित्र जानता हूँ। तुम अगर गले पड़कर इसके साथ जाओगी, तो यह आदमी अपरिचित युवती को साथ लेकर बस्ती में जाते लज्जित होगा। तुमसे भी लोग घृणा करेंगे। तुम कह रही हो, यह व्यक्ति ब्राह्मण है। इसके गले में भी यज्ञोपवीत देख रहा हूँ। यह अगर तुम्हें ब्याहकर ले जाय, तो सब मङ्गल होगा। नहीं तो मैं भी तुम्हें इसके साथ जाने के लिए नहीं कह सकता।"

"ब्या—ह!" इस शब्द का कपालकुण्डला ने बहुत धीरे-धीरे उच्चारण किया। कहने लगी, "ब्याह का नाम तो तुम लोगों के मुख से सुनती हूँ, परन्तु किसे कहते हैं, सविशेष नहीं जानती। क्या करना होगा?"

अधिकारी सिर्फ़ ज़रा मुस्कराकर बोले, "ब्याह ही स्त्रियों के लिए एकमात्र धर्म की सीढ़ी है। इसी लिए स्त्री को सहधर्मिणी कहते हैं। जगन्माता भी शिव की विवाहिता हैं।"

अधिकारी ने सोचा, उन्होंने सब कुछ समझा दिया। कपाल-कुण्डला ने सोचा, वे सब कुछ समझ गईं। कहा, "ऐसा ही हो। परन्तु उन्हें छोड़कर जाते मेरा मन नहीं गवाही दे रहा। उन्होंने इतने दिनों तक मेरा पालनपोषण किया है।"

अधि०—किस लिए पालनपोषण किया है, तुम नहीं जानतीं। स्त्री का सतीत्व नष्ट किये बिना तान्त्रिक सिद्ध नहीं होता, यह तुम नहीं जानतीं। मैंने भी तन्त्रादि पढ़े हैं। माता जगदम्बा संसार की माता हैं। यही सती का सतीत्व है—सतियों में प्रधान। ये सतीत्व-नाशवाली पूजा कभी ग्रहण नहीं करतीं। इसी लिए मैं महापुरुष की इच्छा के प्रतिकूल काम कर रहा हूँ। भागने पर तुम कदापि

कृतघ्न नहीं होगी। सिर्फ़ अब तक सिद्धि का समय नहीं आया, इसी लिए तुम बची रही हो। आज तुमने जो काम किया है, इसमें प्राणों की भी शंका है। इसी लिए कह रहा हूँ, भागो। भवानी की भी यही आज्ञा है। इसलिए जाओ। अगर मेरे लिए यहाँ रखने का उपाय होता तो रखता। परन्तु वह भरोसा जो नहीं, यह तो जानती हो।

"ब्याह ही हो।" यह कहकर दोनों मन्दिर से बाहर निकले। कपालकुण्डला को बैठाकर अधिकारी नवकुमार की शय्या के पास एक कमरे में जाकर उनके सिरहाने बैठे। पूछा, "महाशय, क्या आप सोते हैं?"

नवकुमार की अवस्था नींद लेने की नहीं; वे अपनी दशा सोच रहे थे। कहा, "जी, नहीं।"

अधिकारी ने कहा, "महाशय, एक बार परिचय लेने के लिए आया हूँ। आप ब्राह्मण हैं?"

नव०—जी, हाँ।

अधि०—कौन श्रेणी?

नव०—राढ़ीय श्रेणी।

अधि०—हम लोग भी राढ़ीय ब्राह्मण हैं। उत्कल न समझिएगा। वंश में कुलाचार्य हैं, लेकिन इस समय माता के चरणों पर हैं। महाशय का नाम?

नव०—नवकुमार शर्मा।

अधि०—निवास?

नव०—सप्तग्राम।

अधि०—आप लोग किस घरवाले हैं?

नव०—वन्द्योपाध्याय।

अधि०—कितनी शादियाँ की हैं ?

नव०—सिर्फ़ एक।

नवकुमार ने कुल बातें खोलकर नहीं बतलाईं। वास्तव में उनकी एक शादी भी नहीं थी। उन्होंने रामगोविन्द घोषाल की कन्या पद्मावती से विवाह किया था। विवाह के बाद कुछ दिन पद्मावती नैहर रहीं, बीच बीच ससुराल आती-जाती रहीं। जब उनकी उम्र तेरह साल की थी, उनके पिता अपने परिवार के साथ पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) के दर्शन करने गये थे। इस समय पठान, शाह अकबर से बङ्गाल से निकाले जाकर, उड़ीसा में डेरा डाले हुए थे। उनके दमन के लिए अकबर शाह पूरा प्रयत्न कर रहे थे। जब रामगोविन्द घोषाल उड़ीसा से लौट रहे थे, तब मोग़ल और पठानों में लड़ाई छिड़ी हुई थी। आते समय रास्ते में वे पठान-सेना के हाथ में पड़े। पठान उस समय लौकिक व्यवहार से रहित हो रहे थे। वे लोग निरपराध पथिकों पर अर्थ के लिए बल प्रयोग करने लगे। रामगोविन्द कुछ उग्र स्वभाव के थे, पठानों को खरी-खोटी सुना चले। इसका फल यह हुआ कि वे सपरिवार क़ैद हो गये; अन्त में जातीय धर्म छोड़कर सपरिवार मुसलमान होने पर उन्हें छुटकारा मिला।

रामगोविन्द घोषाल सपरिवार जान लेकर घर आये सही, लेकिन मुसलमान हो गये थे, इस लिए आत्मीयों की समाज से एक साथ बहिष्कृत हुए। इस समय नवकुमार के पिता जीवित थे। उन्हें जातिभ्रष्ट समधी के साथ जातिभ्रष्टा पुत्रवधू का परित्याग करना पड़ा। नवकुमार के साथ उनकी स्त्री की फिर मुलाक़ात नहीं हुई।

अपने जनों से परित्यक्त और समाज से च्युत होकर रामगोविन्द घोषाल अधिक दिनों तक अपने गाँव में नहीं रह सके। इस कारण

से भी और राजप्रसाद से ऊँचा पद पाने की आशा से भी वे अपने परिवार के साथ राजधानी राजमहल में जाकर रहने लगे। दूसरा धर्म ग्रहण करके उन्होंने सपरिवार मुसलमान नाम धारण किये। राजमहल जाने के बाद ससुर की अथवा स्त्री की क्या दशा हुई, इसके मालूम करने का नवकुमार के लिए कोई उपाय नहीं रहा और अब तक कभी कुछ मालूम भी नहीं कर सके। वैराग्य के कारण नवकुमार ने दूसरी शादी नहीं की! इसी लिए कहा, उनकी एक शादी भी नहीं थी।

अधिकारी ये सब बातें नहीं जानते थे। उन्होंने सोचा, "कुलीन के दो भी ब्याह हों तो क्या बुरा है?" खुलकर कहा, "आपसे एक बात पूछने आया था। जिस कन्या ने आपके प्राण बचाये हैं, परहितार्थ अपने प्राण भी उसने दे दिये हैं। जिस महापुरुष के आश्रय में यह रहती है, वे बड़े भयंकर स्वभाव के हैं। आपकी जो दशा हुई थी वही, उनके पास लौटने पर, इसकी भी होगी। इसका कोई उपाय क्या आप नहीं सोच सकते?"

नवकुमार उठकर बैठे। कहा, "मैं भी वही शंका कर रहा था। आप सब कुछ जानते हैं, इसका उपाय कीजिए। मेरे प्राण देने पर भी अगर किसी का प्रत्युपकार हो तो मैं इसके लिए भी तैयार हूँ। मैं ऐसा संकल्प कर रहा हूँ कि मैं उस नरघातक के पास लौटकर आत्मसमर्पण करूँ तो इसकी रक्षा होगी।"

हँसकर अधिकारी ने कहा, "तुम पागल हो। इससे क्या फल होगा? तुम्हारे भी प्राण जायँगे और इसके प्रति महापुरुष का क्रोध भी कम नहीं होगा। इसका एक ही उपाय है।"

नव०—वह कौन सा उपाय?

अधि०—आपके साथ इसका भागना। लेकिन यह बड़ा दुर्घट है। मेरे यहाँ रही तो दो-एक दिन में पकड़ ली जायगी। इस

मन्दिर में महापुरुष सदा आते जाते हैं। इसलिए कपालकुण्डला के भाग्य में अशुभ देख रहा हूँ।

नवकुमार ने आग्रह के साथ पूछा, "मेरे साथ भागना दुर्घट क्यों है?"

अधि०—यह किसकी लड़की है, किस कुल में पैदा हुई है, यह आप कुछ नहीं जानते; किसकी पत्नी है, कैसा चरित्र है, यह आपको कुछ नहीं मालूम। आप इसे कैसे सङ्गिनी कीजिएगा? सङ्गिनी करके ले जाने पर भी क्या आप इसे अपने घर में जगह देंगे? और अगर जगह नहीं देंगे तो यह अनाथा जायगी कहाँ?

कुछ देर तक विचार करके नवकुमार ने कहा, मेरे प्राण बचानेवाली के लिए मुझे कोई भी काम असाध्य नहीं। ये मेरे परिवार में मिलकर रहेंगी।"

अधि०—अच्छा। परन्तु जब आपके आत्मीय स्वजन पूछेंगे, यह किसी स्त्री है, तब आप क्या जवाब देंगे?

नवकुमार फिर विचारकर बोले, "आप ही इसका जवाब बता दीजिए, मैं वही जवाब दूँगा।"

अधि०—अच्छी बात है। लेकिन यह एक पाख से ज़्यादा का रास्ता तुम दोनों युवक-युवती बिना किसी दूसरी सहायता के जाओगे किस तरह? लोग देख सुनकर क्या कहेंगे? आत्मीय स्वजनों की आँखों को क्या समझाओगे? और मैंने भी इस कन्या को माँ कहा है। मैं ही फिर किस तरह इसे अज्ञातचरित्र युवा के साथ अकेली दूर देश भेज दूँ?

नवकुमार ने कहा, "आप साथ चलिए।"

अधि०—मैं साथ जाऊँगा? भवानी की पूजा कौन करेगा?

नवकुमार ने क्षुब्ध होकर कहा, "तो कोई उपाय आप नहीं कर सकते?"

अधि०—एक ही उपाय हो सकता है, लेकिन वह आपकी उदारता की प्रतीक्षा में है।

नव०—वह क्या? मैं किस काम से मुँह फेर रहा हूँ? कौन सा उपाय है, कहिए।

अधि०—सुनिए। ये ब्राह्मण-कन्या हैं। इनका वृत्तान्त मुझे सविशेष मालूम है। ये बचपन में क्रिस्तान-तस्करों से चुराई गई थीं; जहाज़ टूट जाने के कारण वे इन्हें समुद्र के किनारे छोड़ गये थे। यह सब हाल बाद को इनके पास से आप अच्छी तरह मालूम कर सकेंगे। इसे पाकर कापालिक ने अपने योग की सिद्धि की कामना से इसे पाला था। जल्द अपने प्रयोजन की सिद्धि करते। ये अब तक अनूढ़ा हैं। इनका चरित्र परम पवित्र है। आप इनसे विवाह कर इन्हें अपने घर ले जाइए। कोई कुछ न कह सकेगा। मैं यथाशास्त्र विवाह कर दूँगा।

नवकुमार शय्या से उठकर खड़े हो गये। बहुत जल्द जल्द क़दम उठाते हुए इधर-उधर टहलने लगे। कोई जवाब नहीं दिया। अधिकारी ने कुछ देर बाद कहा—आप इस वक्त सोइये। कल सुबह मैं आपको जगाऊँगा। इच्छा हो तो अकेले चले जाइएगा, आपको मेदिनीपुर के रास्ते छोड़ आऊँगा।

यह कहकर अधिकारी विदा हुए। जाते समय मन ही मन कहने लगे, "गाढ़ देश की घटकता * कुछ भूल गया हूँ क्या?"

---

* 'घटक' बङ्गाल में विवाह रचानेवाले को कहते हैं।

नवाँ परिच्छेद

देव-निकेतन में

"कण्व—अलं रुदितेन; स्थिरा भव, इतः पन्थानमालोकय।"

—शकुन्तला।

सुबह अधिकारी नवकुमार के पास आये। देखा, तब तक नवकुमार सोये नहीं थे। पूछा, "अब क्या कर्तव्य है?"

नवकुमार ने कहा, "आज से कपालकुण्डला मेरी धर्मपत्नी हैं। इनके लिए संसार छोड़ना होगा तो वह भी करूँगा। कौन कन्या-सम्प्रदान करेंगे?"

अधिकारी का मुँह हर्ष से उत्फुल्ल हो गया। सोचने लगे, "इतने दिन बाद जगदम्बा की कृपा से मेरी कपालिनी की शायद गति हुई।" खुलकर कहा, "मैं सम्प्रदान करूँगा।" अधिकारी अपने शयन-कक्ष में फिर गये। एक बधने में बहुत ही जीर्ण पुराने ताड़-पत्र थे। उनमें तिथि नक्षत्रादि का लेखा था। वह सब समझकर लौट आकर बोले, "आज यद्यपि विवाहवाला दिन नहीं, फिर भी कोई विघ्न नहीं। गोधूल-लग्न में कन्या-सम्प्रदान करूँगा। तुम सिर्फ़ आज उपासे रहोगे। कुल के आचरण घर जाकर कराना। एक दिन के लिए तुम्हें छिपा रख सकता हूँ, ऐसी जगह है। आज अगर वे आयँगे, तो तुम लोगों की टोह उन्हें मालूम नहीं होगी। बाद को शादी हो जाने पर सपत्नीक सुबह अपने घर चले जाना।"

नवकुमार इससे सम्मत हुए। इस अवस्था में जहाँ तक सम्भव है, वहाँ तक शास्त्रानुकूल काम हुआ। गोधूलि-लग्न में नवकुमार के साथ कापालिक-पालिता संन्यासिनी का विवाह हुआ।

कापालिक का कोई संवाद नहीं मिला। दूसरे दिन सुबह तीनों आदमी यात्रा का उद्योग करने लगे। अधिकारी मेदिनीपुर के रास्ते तक उन्हें छोड़ आयँगे।

चलने के समय कपालकुण्डला कालीजी के दर्शन करने गईं। भक्तिभाव के प्रणाम कर पुष्पपात्र से एक अभिन्न बिल्वपत्र प्रतिमा के पद पर स्थापित कर एक दृष्टि से प्रतिमा को देखती रहीं, पत्र गिर गया।

कपालकुण्डला बड़ी भक्तिपरायणा थीं। प्रतिमा के पद से बिल्वदल गिर गया, देखकर डरीं। यह संवाद उन्होंने अधिकारी को दिया। अधिकारी भी उदास हो गये। बोले, "अब कोई उपाय नहीं। अब पति ही तुम्हारा धर्म है। पति अगर श्मशान गया तो तुम्हें भी साथ-साथ जाना होगा। इसलिए चुपचाप चलो।"

सब चुपचाप चल दिये। काफ़ी दिन चढ़ आने पर मेदिनीपुर की राह पर आये। वहाँ से अधिकारी विदा हुए। कपालकुण्डला रोने लगीं। संसार में जो एक मात्र उनका सुहृद् था, वह विदा हो रहा है।

अधिकारी भी रोने लगे। आँखों से आँसू पोंछकर कपाल-कुण्डला के कान में कहा, "माँ, तू जानती है, परमेश्वरी के प्रसाद से तेरे पुत्र को अर्थ का अभाव नहीं। हिजली के छोटे-बड़े सभी उन्हें भेंट चढ़ाते हैं। तेरी साड़ी में जो कुछ बाँध दिया है मैंने, उसे अपने पति को देकर किराये पर पालकी कर देने के लिए कहना—पुत्र की तरह याद रखना।"

अधिकारी यह कहकर रोते हुए गये। कपालकुण्डला भी रोती हुई चलीं।

—

दूसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

राजपथ पर

" There—now lean on me :
Place your foot here———"

—Manfred.

किसी लेखक का कहना है, "आदमी का जीवन काव्य-विशेष है" कपाल-कुण्डला के जीवन-काव्य का एक सर्ग समाप्त हुआ। बाद क्या होगा ?

नवकुमार ने मेदिनीपुर आकर अधिकारी के दिये धन के बल से कपालकुण्डला के लिए एक दासी, एक रक्षक और पाल्की-कहार करके, उन्हें शिविका पर भेज दिया। धन कम होने के कारण स्वयं पैदल चले। पिछले दिन की मिहनत से नवकुमार थक गये थे। दुपहर के भोजन के बाद कहार उन्हें बहुत पीछे छोड़ गये। क्रमशः सन्ध्या हुई। शीतकाल के बादलों के टुकड़ों से आकाश ढँक गया है। सन्ध्या भी बीत चुकी है। पृथिवी अन्धकारमयी हो गई। बूँद-बूँद बारिश भी होने लगी। नवकुमार कपाल-कुण्डला के साथ मिलने की जल्दी करने लगे। मन ही मन निश्चय था कि पहली सराय में उनसे मुलाक़ात होगी। लेकिन सराय में मुलाक़ात नहीं हुई। प्रायः चार-छः दण्ड रात बीत गई। नव-कुमार जल्द-जल्द क़दम उठाते हुए चले। अकस्मात् किसी कठिन

द्रव्य पर उनका पैर पड़ा। पैर पड़ने से वह वस्तु चरचराती हुई टूट गई। नवकुमार खड़े हुए। फिर चले। फिर वैसा ही हुआ। पैर में लगी वस्तु को हाथ में उठाया। देखा, वह वस्तु टूटे तख़्ते की तरह की है।

आकाश मेघों से ढँका होने पर भी प्रायः ऐसा अँधेरा नहीं होता कि खुली जगह एक स्थूल वस्तु का अवयव न देख पड़े। सामने एक बड़ी वस्तु पड़ी थी; नवकुमार ने टटोलकर समझा, वह एक बड़ी पाल्की है। साथ ही उनके हृदय में कपालकुण्डला की विपत्ति की शंका हुई। शिविका की तरफ़ जाते हुए पुनः एक दूसरे प्रकार के पदार्थ में उनका पैर लगा। यह स्पर्श कोमल मनुष्य-शरीर के स्पर्श-सा लगा। बैठकर हाथ फेरकर देखा, मनुष्य-शरीर ही है। स्पर्श बड़ा शीतल; इसके साथ किसी गीली चीज़ का स्पर्श मालूम दिया। नब्ज़ देखी, गतिहीन थी। प्राण निकल गये हैं। मन को विशेष रूप से एकाग्र कर देखा, जैसे साँस चलने की आहट मिल रही है। साँस चल रही है, पर नब्ज़ नहीं मिलती, ऐसा क्यों? क्या यह रोगी है? नाक के पास हाथ ले जाकर देखा, साँस नहीं चल रही थी। फिर आवाज़ कैसी? मुमकिन, कोई ज़िन्दा आदमी भी यहाँ हो, यह सोचकर पूछा, "यहाँ कोई ज़िन्दा आदमी है?"

मृदु स्वर से उत्तर हुआ, "है।"

नवकुमार ने पूछा, "तुम कौन हो?"

उत्तर आया, "तुम कौन हो?" नवकुमार के कानों में स्त्री-कण्ठ का स्वर मालूम दिया। व्यग्र होकर पूछा, "क्या कपाल-कुण्डला हो?"

स्त्री ने कहा, "कपालकुण्डला कौन है, यह तो नहीं जानती, मैं पथिक हूँ, फ़िलहाल डाकुओं के हाथ निष्कुण्डला हो रही हूँ।"

व्यङ्ग्य सुनकर नवकुमार कुछ प्रसन्न हुए। पूछा, "क्या हुआ है ?"

उत्तर देनेवाली ने कहा, "डाकुओं ने मेरी पालकी तोड़ दी है, मेरे एक कहार को मार डाला है और सब भाग गये हैं। डाकू मेरी देह के अलंकार सब लेकर मुझे पालकी से बाँध गये हैं।"

अँधेरे में बढ़कर नवकुमार ने देखा दरअस्ल एक स्त्री पालकी के साथ कपड़े से मज़बूत बँधी हुई है। नवकुमार ने जल्द-जल्द उसके बन्धन खोले और पूछा, "क्या तुम उठ सकती हो ?" स्त्री ने कहा, "मुझे भी लाठी का एक वार लगा है, इसलिए पैर में दर्द है, परन्तु जान पड़ता है, कुछ मदद करने पर उठ सकूँगी।"

नवकुमार ने हाथ बढ़ा दिया। पकड़कर रमणी उठी। नवकुमार ने पूछा, "क्या चल सकोगी ?"

स्त्री ने जवाब न देकर पूछा, "आपके पीछे कोई पथिक आ रहा है—आपने देखा है ?"

नवकुमार ने कहा, "नहीं।"

स्त्री ने फिर पूछा, "चट्टी कितनी दूर होगी ?"

नवकुमार ने कहा, "कितनी दूर होगी, नहीं बता सकूँगा। परन्तु जान पड़ता है, निकट है।"

स्त्री ने कहा, "अँधेरे में अकेली मैदान में बैठी क्या करूँगी, आपके साथ चट्टी तक जाना ही उचित है। जान पड़ता है, किसी पर किसी तरह का सहारा करने को मिले, तो चल सकूँगी।"

नवकुमार ने कहा, "विपत्ति के समय संकोच करना मूर्ख का काम है। मेरे कन्धे का सहारा लेकर चलो।"

स्त्री ने मूर्खता का काम नहीं किया। नवकुमार के कन्धे पर ही भार देती हुई चली।

सचमुच ही चट्टी पास थी ? इन दिनों में चट्टी के पास भी ऐसी दुक्रियाएँ करते डाकू हिचकते नहीं थे। ज्यादा देर किये बिना नवकुमार अपनी साथ वाली को साथ लेकर वहाँ पहुँचे।

नवकुमार ने देखा, उस चट्टी में कपालकुण्डला ठहरी हुई थी। उनके नौकरों ने उनके लिए एक कमरा ले लिया था। नवकुमार अपनी सङ्गिनी के लिए उसके बग़लवाला कमरा किराये कर उसमें उन्हें ले गये। उनकी आज्ञा के अनुसार मालिक-मकान की स्त्री वहाँ दीपक जलाकर ले आई। जब दीपक की किरणें उनक सङ्गिनी पर पड़ी, तब नवकुमार ने देखा, वे असामान्य सुन्दरी हैं। रूपराशि की तरङ्ग से उनकी यौवन-शोभा सावन की नदी की तरह ल्लापकर छलक रही थी।

——

दूसरा परिच्छेद

सराय में

"क्वैषा योषित प्रकृतिचपला।"

—उद्धवदूत।

यदि ये रमणी निष्कलंक-सुन्दरी होती, तो हम कहते, हे पुरुषपाठक! ये आपकी गृहिणी की तरह सुन्दरी हैं और सुन्दरी पाठिका! ये दर्पण में पड़ी आपकी छाया की तरह सुन्दरी हैं तो रूप-वर्णना की हद हो जाती। दुर्भाग्य से ये सर्वाङ्गसुन्दरी नहीं, इसलिए निरस्त होना पड़ा।

ये सर्वाङ्गसुन्दरी नहीं, यह कहने का कारण यह है कि पहले तो इनकी देह मझोले क़द से कुछ लम्बी है, दूसरे होंठ कुछ दबे हुए हैं, तीसरे सही मानी में ये गोरी नहीं।

देह कुछ लम्बी है ज़रूर, परन्तु हाथ, पैर, हृदय आदि कुल अङ्ग सुन्दर और सम्पूर्ण हैं। वर्षाकाल में जैसे विटपी-लता अपने पत्रों के बाहुल्य से लहराया करती है, इनकी देह उसी तरह अपनी सम्पूर्णता से टलमल कर रही थी। इसीलिए कुछ लम्बी देह भी पूर्णता के कारण अधिक शोभा धारण किये हुए थी। जिन्हें सही सही गोरी कहते हैं, उनमें किसी का रङ्ग पूरे चाँद की कौमुदी जैसा होता है, किसी-किसी का कुछ ललाई लिये हुए ऊषा जैसा। इनका रङ्ग इन दोनों से जुदा है। इसलिए इन्हें सही-सही गोरी नहीं कहा, परन्तु मुग्ध करनेवाली शक्ति में इनका रङ्ग घटकर भी नहीं। ये श्यामवर्णा हैं। "श्यामा मा" या "श्यामसुन्दर" जिस श्याम-

वर्ण के उदाहरण हैं, यह वह श्यामवर्ण नहीं, तपे सोने का जो श्याम रङ्ग है, यह वही श्याम है। पूर्ण चन्द्र की किरण-लेखा अथवा स्वर्ण-मेघ का किरीट पहने हुए ऊषा यदि गौराङ्गियों के वर्ण की प्रतिमा हों, वसन्त में निकले, आम के नये कोंपलों की शोभा इस श्यामा के वर्ण के अनुरूप कही जा सकती है। पाठक-महाशयों में बहुतेरे गौराङ्गी के रङ्ग की प्रतिष्ठा कर सकते हैं, परन्तु यदि कोई ऐसी श्यामा के मन्त्र से मुग्ध हों तो उन्हें मैं रङ्ग के ज्ञान से रहित नहीं कह सकूँगा। इस प्रसङ्ग में जिन्हें नफ़रत हो, वे एक दफ़ा आम के नये कोंपल और भौंरों-सी गोरे ललाट पर पड़ी हुई अलकें सोचें। वे समझी के चाँद-सी ललाट के नीचे अलकों को छूनेवाली भौंहें याद करें; वे पके आम-से उज्ज्वल कपोल सोचें; उनके बीच गहरे-लाल छोटे-छोटे होंठ याद करें; तो यह न पहचानी हुई रमणी सुन्दरियों में भी सुन्दरी मालूम देगी। दोनों आँखें बहुत बड़ी नहीं, परन्तु ख़ासी टेढ़ी पल्लव की रेखावाली हैं और बहुत ही चमकीली। उनके कटाक्ष स्थिर हैं अथच मर्मभेदी। तुम पर निगाह पड़ने पर तुम उसी वक्त समझने लगोगे कि यह स्त्री तुम्हारा मन तक देख रही है। देखते-देखते उस मर्मभेदी दृष्टि में दूसरा भाव उठता है, आँखें सुकोमल स्नेह-रस में डूब जाती हैं। फिर कभी उनमें सुख के आवेश से पैदा हुआ केवल क्लान्ति का प्रकाश रहता है, जैसे वे आँखें मन्मथ की स्वप्न-शय्या हों। कभी लालसा से स्फारित होकर मदन-मद से डगमगाती रहती हैं। फिर कभी चपल कोरों में क्रूर कटाक्ष होता है, जैसे बादल में बिजली। मुख की कान्ति में दो अनिर्वचनीय शोभाएँ हैं; पहली, सब जगह जानेवाली बुद्धि का प्रभाव; दूसरी महती आत्म-गरिमा। इन कारणों से जब वे अपनी मराल-ग्रीवा टेढ़ी कर खड़ी होती हैं, तब सहज ही मालूम देता है, ये रमणियों की रानी हैं।

सुन्दरी की उम्र सत्ताईस साल की है—भादों की भरी नदी। भादों के महीने की नदी के जल की तरह इनकी रूप-राशि टलमल कर रही है—छापे पड़ रही है। रङ्ग से, आँखों से, सबसे इस ख़ूबसूरती का भराव आकर्षक है। पूरी जवानी के भार से सारी देह सदा कुछ चपल रहती है बिना हवा के नई शरत् की नदी जैसे कुछ चपल रहती है, वैसे ही चपल; वह चपलता बार बार नई नई शोभा धारण करने की वजह से है। नवकुमार बिना पलक मारे वह नई नई शोभा देख रहे थे।

नवकुमार की आँखें अनिमेष हैं, देखकर सुन्दरी ने पूछा, "आप क्या देख रहे हैं? मेरा रूप?"

नवकुमार भलेमानस हैं; अप्रतिभ होकर सर झुका लिया। नवकुमार को निरुत्तर देखकर अपरिचिता फिर हँसकर बोली, "आपने क्या कभी स्त्री नहीं देखी? या आप मुझे बड़ी सुन्दरी सोच रहे हैं?"

सहज भाव से यह बात कही जाती तो तिरस्कार-जैसी मालूम देती, परन्तु रमणी ने जिस मज़ाक़ में कहा, वह व्यङ्ग्य के सिवा और कुछ नहीं जान पड़ा। नवकुमार ने देखा, यह बड़ी मुखरा है। मुखरा की बात का क्यों जवाब न दिया जाय? उन्होंने कहा, "मैंने स्त्री देखी है, परन्तु ऐसी सुन्दरी नहीं देखी।"

रमणी ने सगर्व पूछा, "एक भी नहीं?"

नवकुमार के हृदय में कपालकुण्डला का रूप जग रहा था; उन्होंने भी सगर्व कहा, "एक भी नहीं, ऐसा नहीं कह सकता।"

पत्थर पर लोहे की चोट पड़ी। उत्तरकारिणी ने कहा, "फिर भी अच्छा है। वह क्या आपकी गृहिणी है?"

नव—क्यों, गृहिणी क्यों समझ रही हो?

स्त्री—बङ्गाली अपनी गृहिणी को सब से सुन्दरी देखते हैं।

नव०—मै बङ्गाली हूँ; आप भी तो बङ्गाली की जैसी बातचीत कर रही हैं; आप और किस देश की हैं ?

युवती अपने पहनावे की ओर नज़र डालकर बोली, "यह बदक़िस्मत, बङ्गालिन नहीं है, पञ्जाब की मुसलमानिन है।" नवकुमार ने अच्छी तरह देखा, पहनावा सही सही पञ्जाब की मुसलमानिन-जैसा है, परन्तु बँगला ठेठ बङ्गालिन जैसी बोल रही है। कुछ देर बाद तरुणी कहने लगी, "महाशय, वाग्वैदग्ध्य मे मेरा परिचय आपने लिया, अब अपना परिचय देकर चरितार्थ कीजिए। जिस गृह में वह अद्वितीया रूपवती गृहिणी है, वह गृह कहाँ है ?"

नवकुमार ने कहा, "मैं सप्तग्राम रहता हूँ।"

विदेशिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। एकाएक वह मुँह झुकाकर दिया जगाने लगी।

कुछ देर बाद मुँह बिना उठाये बोली, "ख़ादिमा का नाम मोती है। जनाब का इस्मशरीफ़ ?"

नवकुमार ने कहा, "मुझे नवकुमार शर्मा कहते हैं।"

दिया गुल हो गया।

— —

तीसरा परिच्छेद

सुन्दरी-दर्शन में

"———धरो देवि मोहन मूरति, देहो आज्ञा, साजाइ ओ वर वपु, आनि नाना आभरण।"

—मेघनादवध

मकान की मालकिन को बुलाकर नवकुमार ने दूसरा दिया लाने के लिए कहा। दूसरे दिये के आने से पहले एक लम्बी साँस उन्होंने सुनी। दिया लाने के कुछ देर बाद नौकर-जैसा एक मुसलमान आया। उसे देखकर विदेशिनी ने कहा, "यह क्या, तुम लोगों को इतनी देर क्यों हुई? और सब कहाँ हैं?"

नौकर ने जवाब दिया, "कहार सब दारू पिये हुए मतवाले हो रहे थे। उन्हें इकट्ठा करके लाते हुए हम लोग पाल्की के पीछे रह गये थे। बाद को टूटी पाल्की देखकर और आपको न देख हमारे होश ही उड़ गये थे। कुछ अभी वहीं हैं; कुछ आपकी खोज में इधर-उधर गये हैं। मैं यहाँ तलाश करने आया हूँ।"

मोती ने कहा, "उन्हें ले आओ।"

नौकर सलाम करके चला गया। विदेशिनी कुछ देर तक गाल हथेली पर लिये बैठी रहीं।

नवकुमार ने विदा माँगी। तब मोती स्वप्न देखकर उठी हुई-जैसे खड़ी होकर पहले के भाव से बोली, "आप कहाँ रहेंगे?"

नव०—इसके बाद ही वाले कमरे में।

मोती—आपके उस कमरे के पास एक पाल्की देखी है। क्या आपका कोई साथी भी है ?

नव०—मेरी स्त्री साथ है।

मोती बीबी को फिर व्यङ्ग्य का अवकाश मिला। पूछा, "वही क्या बेजोड़ ख़ूबसूरत हैं ?"

नव०—देखने पर समझिएगा।

मोती—क्या देख सकती हूँ ?

नव०—(सोचकर) क्या हानि ?

मोती—तो ज़रा कृपा कीजिए। अद्वितीया रूपवती को देखने का बड़ा कौतूहल हो रहा है। आगरे जाकर कहना चाहती हूँ। परन्तु अभी नहीं; अभी आप जाइए। कुछ देर बाद मैं आपको संवाद दूँगी।

नवकुमार चले गये। कुछ देर बाद बहुत से आदमी, नौकर-नौकरानियाँ, और कहार सन्दूक़ वग़ैरह लिये हुए आकर हाज़िर हुए। एक पाल्की भी आई; उसमें एक नौकरानी थी। बाद को नवकुमार के पास ख़बर आई कि बीबी ने याद किया है।

नवकुमार मोती बीबी के पास फिर आये। देखा, इस बार दूसरा रूप है। पहला पहनावा उतारकर मोती बीबी ने मोती और सोने के तरह-तरह के कामवाले ज़ेवर और वस्त्र पहने हैं। बिना आभूषण की देह को आभूषणों से खचित किया है। जहाँ जो कुछ अटता है—कुन्तल में, कबरी में, कपाल में, कोरों में, कानों, गले में, हृदय में, बाहों में, सब जगह सोने के भीतर से हीरे आदि रत्न झुलस रहे हैं। नवकुमार की आँखें अस्थिर हुईं। ज़्यादातर औरतें सोने के ज़्यादा गहने पहन लेने पर अक्सर कुछ बदसूरत नज़र आने लगती हैं; परन्तु मोती बीबी की वैसी श्रीहीनता या वैसी दशा नहीं देख पड़ती थी। अधिकाधिक नक्षत्रों की माला से भूषित

आकाश की तरह मधुर और आयत देह के साथ अलंकारों की बहुलता सुसङ्गत मालूम देने लगी, बल्कि उनसे सुन्दरता की प्रभा और बढ़ गई। मोती बीबी ने नवकुमार से कहा, "महाशय, चलिए, आपकी पत्नी से परिचित हो आऊँ।" नवकुमार ने कहा, "इसके लिए गहने पहनने की आवश्यकता नहीं थी, मेरी स्त्री के कोई गहना नहीं।"

मोती बीबी -- समझिए, गहने दिखाने के लिए पहने हैं। स्त्रियों के गहने होने पर बिना दिखाये नहीं रह सकतीं। अच्छा, चलिए।

नवकुमार मोती बीबी को साथ ले चले। जो नौकरानी पालकी पर चढ़कर आई थी वह भी साथ चली। इसका नाम पेशमन है।

कपाल-कुण्डला उस सरायवाले कमरे के गीले फ़र्श पर अकेली बैठी थीं। सिर्फ़ एक टिमटिमाता हुआ दिया जल रहा था। नवबँधी घनी केशराशि पीछे अँधेरा किये हुए थी। मोती बीबी ने जब पहले-पहल उन्हें देखा तब होठों में और कोरों में ज़रा मुस्किराहट खुली। अच्छी तरह देखने के लिए दिया उठाकर कपाल-कुण्डला के मुँह के पास ले आई। तब वह मुस्किराहटवाला भाव दूर हो गया; मोती का मुँह गम्भीर हुआ; एकटक देखती रही। कोई कोई बात नहीं करती; मोती मुग्ध है; कपाल-कुण्डला कुछ विस्मिता।

कुछ देर बाद मोती अपने अङ्गों से अलंकारराशि खोलने लगीं। अपने अङ्ग से गहने खोल-खोलकर मोती कपालकुण्डला को पहनाने लगीं। कपालकुण्डला कुछ नहीं बोलीं। नवकुमार कहने लगे, "यह क्या हो रहा है?" मोती ने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

गहने ज्यों के त्यों पहनाये जा चुकने पर, मोती ने नवकुमार से कहा, "आपने सच कहा था। यह फूल राजों की फुलवाड़ी में भी नहीं खिलता। अफ़सोस यह है कि यह रूपराशि मैं राजधानी में नहीं दिखा सकी। ये सब अलंकार इन्हीं अङ्गों के योग्य हैं, इसी

लिए पहना दिये। आप भी कभी-कभी पहनाकर मुखरा विदेशिन की याद कीजिएगा।"

नवकुमार चकित होकर बोले, "यह क्या! ये तो बहुत क़ीमती गहने हैं। ये सब लूँगा भी क्यों?"

"ईश्वर के प्रसाद से मेरे और भी हैं। मैं निराभरण नहीं हूँगी। इसे पहनाकर अगर मुझे सुख होता हो तो आप अड़चन क्यों डालते हैं?" यह कहकर मोती बीबी दासी के साथ चली गई। एकान्त में आने पर पेशमन ने मोती बीबी से पूछा, "बीबी, यह आदमी कौन था?"

यवनबाला ने जवाब दिया, "मेरा ख़सम।"

चौथा परिच्छेद

शिविका पर

"……खुलिनु सत्त्वरे,
कङ्कण, वलय, हार, सींथि, कण्ठमाला,
कुण्डल, नूपुर, काञ्ची।"

—मेघनादवध।

गहने की दशा क्या हुई, सुनो, कहता हूँ। गहने रखने के लिए मोती बीवी ने एक चाँदी-जड़ी हाथीदाँत की सन्दूक़ची भेज दी। डाकू उनकी थोड़ी ही सामग्री लूट सके थे। उनके पास जो कुछ था, उसके अलावा और कुछ नहीं मिला।

दो थान गहने कपाल-कुण्डला के बदन में रखकर बाक़ी सब नवकुमार ने उसी सन्दूक़ची में रख दिया। दूसरे दिन सुबह को मोती बीवी बर्दवान की तरफ़ और नवकुमार सपत्नीक सप्तग्राम की तरफ़ चले। नवकुमार ने कपाल-कुण्डला को शिविका का पर बैठा कर उसके साथ गहनों की सन्दूक़ची भी दी। कहार सहज ही नवकुमार को पीछे छोड़कर बढ़े। कपालकुण्डला शिविका का द्वार खोलकर चारों ओर देखती हुई जा रही थी। एक भिखारी उन्हें देखकर भीख माँगता हुआ पाल्की के साथ साथ चला।

कपाल-कुण्डला ने कहा—"मेरे पास तो कुछ भी नहीं, तुम्हें क्या दूँ?"

कपाल-कुण्डला की देह में जो दो थान गहने थे, उनकी तरफ़ उँगली उठाकर भिखारी ने कहा, "यह क्या कहती हो माँ, तुम्हारी देह पर हीरे-मोती हैं, तुम्हारे कुछ भी नहीं?"

कपाल-कुण्डला ने पूछा, "गहने मिलने पर तुम ख़ुश होगे ?"

भिखारी कुछ तअज्जुब में पड़ा। भिक्षुक की आशा अमित है। कुछ देर बाद बोला, "हूँगा क्यों नहीं ?"

अकपट हृदय से कुल गहनों की सन्दूक़ची भिक्षुक के हाथ में कपाल-कुण्डला ने रख दी। बदन के गहने भी खोलकर दे दिये।

भिक्षुक कुछ देर तक विह्वल रहा। दास-दासी कुछ भी नहीं मालूम कर सके। भिक्षुक का विह्वल भाव क्षणिक था। उसी वक़्त वह इधर-उधर देखकर ऊँची साँस खींचकर गहने लेकर भागा। कपाल-कुण्डला ने कहा, "भिक्षुक भागा क्यों ?"

पाँचवाँ परिच्छेद

स्वदेश में

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात् ।
कर्णे लोलं कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ॥

—मेघदूत

नवकुमार कपाल-कुण्डला को लेकर अपने देश पहुँचे। नवकुमार के पिता नहीं थे, उनकी विधवा माँ घर में थीं, और दो बहनें थीं। बड़ी बहन विधवा थी, उससे पाठक महाशय का परिचय नहीं होगा। दूसरी श्यामासुन्दरी सधवा होकर भी विधवा थीं, क्योंकि वे कुलीन की पत्नी थीं। वे दो-एक बार हमें दर्शन देंगी।

यदि किसी दूसरी अवस्था में नवकुमार अज्ञात-कुलशीलवाली किसी तपस्विनी को ब्याहकर घर ले आते, तो उनके आत्मीय-स्वजन कहाँ तक ख़ुश होते, हम नहीं कह सकते। लेकिन इस अवस्था में उन्हें दरअस्ल कोई दिक़्क़त नहीं सामने मिली। उनके आने के सम्बन्ध में सभी निराश्वास हो गये थे। उनके साथियों ने लौटकर यह घोषित किया था कि नवकुमार को बाघ पकड़ ले गया है। पाठक महाशय समझेंगे कि इन सत्यवादियों ने अपने विश्वास के अनुसार कहा था, लेकिन इतनी ही बात मान लेने पर उनकी कल्पना-शक्ति को नीचा देखना पड़ता था; फलतः बाघ की बड़ाई पर कभी-कभी तर्क-वितर्क भी हुआ; किसी ने कहा, "बाघ आठ हाथ का होगा।" किसी ने कहा, "नहीं प्रायः चौदह हाथ का।"

पहले के परिचित प्राचीन यात्री ने कहा, "कुछ हो, मैं बहुत बचा। बाघ पहले मेरी ही तरफ़ झपटा था, मैं भागा। नवकुमार के उतनी हिम्मत नहीं थी, वह भाग नहीं पाया।"

जब ये घटनाएँ नवकुमार की माँ-आदि ने सुनीं तब घर के भीतर ऐसी रुलाई हुई कि कुछ रोज़ तक इसकी शान्ति नहीं हुई। इकलौते लड़के की मृत्यु के संवाद से नवकुमार की माँ एक बार ही मरणा-सन्न हो गईं। ऐसे समय नवकुमार जब सस्त्रीक अपने घर पहुँचे, तब उनसे कौन पूछे कि तुम्हारी बहू किस जाति की है, किसकी लड़की है? सभी मारे आनन्द के अन्धे हो गये।

नवकुमार की माँ बड़े आदर से बहू का वरण कर घर ले गईं।

जब नवकुमार ने देखा कि कपालकुण्डला उनके घर में आदर-पूर्वक ली गई तब उनके आनन्द का समुद्र उमड़ने लगा। अनादर के भय से कपालकुण्डला को पाकर भी किसी तरह का आह्लाद या प्रणय-लक्षण उन्होंने नहीं ज़ाहिर किया, अथ च उनके हृदय का आकाश कपाल-कुण्डला की मूर्ति से ही व्याप्त था। इसी आशंका से वे कपाल-कुण्डला के पाणि-ग्रहण के प्रस्ताव पर सम्मत नहीं हुए। इसी शंका से पाणिग्रहण करके भी घर पहुँचने तक कपाल-कुण्डला के साथ प्रेम-सम्भाषण नहीं किया। उमड़ते हुए अनुराग के सिन्धु में एक भी तरङ्ग विक्षिप्त होने नहीं दी। वह आशंका दूर हुई। जलराशि के बहाव में गति रोकनेवाले पत्थरों के दूर करने का जैसा अदम्य तरङ्गवेग पैदा होता है, वैसे ही वेग से नवकुमार का प्रेम-सिन्धु तरङ्ग लेने लगा।

प्रेम का यह आविर्भाव सदा बातों से नहीं व्यक्त होता था, बल्कि नवकुमार कपालकुण्डला को देखते ही जैसे सजल लोचनों से उनके प्रति अनिमेष देखते रहते थे, उसी से प्रकाश पाता था; जिस तरह बिना ज़रूरत के ज़रूरत की कल्पना कर कपालकुण्डला के

पास आते थे, उससे ज़ाहिर होता था; जिस तरह बिना प्रसंग के कपालकुण्डला के पास आते थे, उससे स्पष्ट होता था; जिस तरह बिना प्रसङ्ग के कपाल-कुण्डला का प्रसङ्ग छेड़ते थे, उससे प्रकाशित होता था; सदा अनमने भाव की सूचना देनेवाली चाल से सूचित था। उनकी प्रकृति तक बदलने लगी। जहाँ चापल्य था, वहाँ गम्भीरता आ गई; जहाँ अवसाद था, वहाँ प्रसन्नता पैदा हो गई; नवकुमार का मुँह सदा प्रफुल्ल रहने लगा। हृदय स्नेह का आधार हो जाने के कारण दूसरों के लिए भी स्नेह की अधिकता पैदा हुई। जिनसे नफ़रत थी, उनसे नफ़रत घट गई; हर आदमी प्रेम का पात्र बन गया। दुनिया केवल सत्कर्म के लिए रची गई है, मालूम देने लगा। सारा संसार सुन्दर दिखने लगा। प्रणय ऐसा ही है। प्रणय कर्कश को मधुर कर देता है, असत् को सत् करता है, निष्पुण्यात्मा को पुण्यवान् बनाता है, अँधेरे को उजाला कर देता है।

और कपालकुण्डला? उसका क्या भाव है? चलो, पाठक, उसे देखें।

—

छठा परिच्छेद

अवरोध में

"किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥"

—कुमारसम्भव ।

सब लोग जानते हैं कि पहले सप्तग्राम बड़ा समृद्धिशाली नगर था। एक वक्त यवद्वीप से रोम तक सब देशों के वणिक वाणिज्य के लिए इस महानगर में आकर मिलते थे। परन्तु सोलहवीं-सत्रहवीं सदी से सप्त-ग्राम का प्राचीन गौरव घट गया था। इसका मुख्य कारण यह है कि उस नगर के प्रान्त भाग को धोती हुई जो नदी बह रही थी, वह इस समय संकीर्ण-शरीरा होती आ रही थी; इसलिए बड़े बड़े जहाज़ नगर तक नहीं जा पाते थे। इस कारण से वाणिज्य की बहुलता क्रमशः लुप्त होती आ रही थी। वाणिज्य का गौरव रखनेवाले नगर का वाणिज्य नष्ट होने पर सब कुछ नष्ट होता है। सप्तग्राम का भी सब कुछ गया। सत्रहवीं सदी में हुगली नये सौष्ठव से उसकी प्रतियोगिनी होती जा रही थी। वहाँ पोर्तुगीज वाणिज्य का सूत्रपात करके सप्तग्राम की धनलक्ष्मी को आकर्षित कर रहे थे। परन्तु उस समय भी सप्तग्राम बिलकुल ही श्रीहत नहीं हुआ। वहाँ अब तक फ़ौजदार आदि प्रधान राजपुरुषों

का वास था। परन्तु नगर का अधिकांश भाग श्रीहीन और वीरान होकर गाँव के रूप में बदल चुका था।

समग्राम के एक निर्जन उपनगरवाले भाग में नवकुमार रहते थे। इस समय समग्राम की उजड़ी हालत से वहाँ प्रायः मनुष्यों का समागम नहीं था। बड़े-बड़े रास्ते लतागुल्मादि से भर गये थे। नवकुमार के घर के पीछे ही एक चौड़ा घना वन था। मकान के सामने प्रायः आधे कोस दूर पर एक नहर बहती थी। वह नहर एक छोटे प्रान्तर को घेरकर घर के पीछेवाले वन में होकर चली गई थी। मकान ईंटों का बना था। देशकाल की विवेचना करने पर उसे निहायत छोटा घर नहीं कह सकते थे। घर दुतल्ला था, परन्तु बहुत ऊँचा नहीं. इस समय अक्सर इकमञ्ज़ले की वैसी ऊँचाई देख पड़ती है।

इस मकान की छत पर दो नई उम्रवाली स्त्रियाँ खड़ी हुई चारों तरफ़ देख रही थीं। सन्ध्या आ गई थी। चारों ओर जो कुछ देख पड़ता था, वह आँखों को अच्छा लगनेवाला अवश्य था। पास ही एक तरफ़ घना वन है। उसमें असंख्य चिड़ियाँ कलरव कर रही हैं। दूसरी ओर छोटी-सी नहर चाँदी के सूत की तरह पड़ी हुई है। दूर महानगर की सौधमाला नये वासन्ती पवन के स्पर्श के लिए लोलुप नागरिकों से परिपूर्ण होकर शोभा पा रही है। दूसरी ओर बहुत दूर नावों के आभरणवाली भागीरथी के विशाल वक्ष पर सन्ध्या का अँधेरा क्रमशः गहरा होता जा रहा है।

जो दोनों नवीना छत पर खड़ी थी, उनमें एक चन्द्ररश्मि की प्रभावाली है, न-बँधे केशों में प्रायः आधी छिपी; दूसरी कृशाङ्गी हैं, वे भी सुमुखी षोडशी हैं; वे छोटी देह छोटे से मुँहवाली हैं; मुँह का ऊपरवाला आधा हिस्सा चारों तरफ़ से घुँघराली लटों से घिरा हुआ है। जैसे नीले कमल के दल कमल के बिचले हिस्से

को घेरे हुए हैं। दोनों आँखें स्फारित हैं, कोमल, श्वेतवर्ण, मछलियाँ जैसी। अँगुलियाँ बहुत छोटी-छोटी, सङ्गिनी की केशतरङ्गों में खेल रही हैं। पाठक महाशय समझ गये हैं कि चन्द्ररश्मि शोभावाली कपाल-कुण्डला हैं, उनसे कह दें, कृशाङ्गी उनकी ननद श्यामासुन्दरी है।

श्यामासुन्दरी भावज को कभी 'बहू', कभी आदर करके 'बहन', कभी 'मृण्मो'—सम्बोधन करती थीं। कपालकुण्डला नाम विकट था, इसलिए घरवालों ने उनका नाम मृण्मयी रक्खा था; इसी लिए 'मृण्मो' सम्बोधन है। हम भी अब कभी कभी इन्हें मृण्मयी कहेंगे।

श्यामासुन्दरी बचपन से अभ्यस्त एक कविता पढ़ रही थी, जैसे—

"बले—पद्मरानी, वदनखानि, रेते राख ढेके।
फुटाय कलि छुटाय अलि, प्राणपतिके देखे॥
आबार—बनेर लता छड़िये पाता गाछेर दिके धाय।
नदीर जल नामले ढल, सागरेते जाय॥
छि छि—सरम टुटे कुमुद फुटे चाँदेर आलो पेले।
धियेर कने राखते नारि फूलशय्या गेले॥
मरि—ए कि ज्वाला विधिर खेला, हरिषे विषाद।
परपरशे सबाइ रसे भाङ्गे लाजेर बाँध॥"

(कहा है, पद्मरानी अपना मुँह रात को ढँक रखती है। कली खिलती है, अलि दौड़ता है, प्राणपति को देखती है (कली)। फिर वन की लता पत्ते फैलाकर पेड़ की तरफ़ दौड़ती है। नदी का पानी उतरने पर ढालू समुद्र में जाता है। छिः छिः—लाज तोड़कर कुमुद खिलती है चाँद का आलोक मिलने पर। ब्याही हुई लड़की को हम रख नहीं सकते जब वह फूलशय्या पर जा चुकती है। मरती

हूँ—यह कैसी जलन है, विधाता का खेल, हर्ष में विषाद है। दूसरे के स्पर्श से सभी रस्में लाज का बन्धन तोड़ देती हैं।)

"क्यों री, तू अकेली तपस्विनी रहेगी?"

मृण्मयी ने जवाब दिया, "क्यों कौन सी तपस्या कर रही हूँ?"

श्यामासुन्दरी दोनों हाथों से मृण्मयी की केशतरङ्ग-माला उठाकर बोली, "अपनी यह बालों की राशि क्या बाँधोगी नहीं?"

मृण्मयी ने केवल कुछ हँसकर श्यामासुन्दरी के हाथ से बालों को खींच लिया।

श्यामासुन्दरी ने फिर कहा. "अच्छा, मेरी यह साध भी पूरी करो। एक बार हमारी, गृहस्थ की बहू की तरह सजो, कितने दिन योगिनी रहोगी?"

मृ०—जब ब्राह्मण-पुत्र से मुलाक़ात नहीं हुई तब तो मैं योगिनी ही थी।

श्या०—अब और नहीं रह सकोगी।

मृ०—क्यों नहीं रह सकूँगी?

श्या०—क्यों? देखोगी, तुम्हारा योग तोड़ दूँ? पारस पत्थर किसे कहते हैं, जानती हो?

मृण्मयी ने कहा, "नहीं।"

श्या०—पारस पत्थर के छू जाने से लोहा भी सोना हो जाता है।

मृ०—उससे क्या हुआ?

श्या०—स्त्री के भी पारस पत्थर है।

मृ०—वह क्या है?

श्या०—पुरुष। पुरुष की हवा लगने पर योगिनी भी गृहिणी बन जाती है। तूने वही पत्थर छुआ है। देखना—

"बाँधिब चुलेर राश, पराब चिकन बास,
खोंपाय दोलाब तोर फूल।
कपाले सीथिर धार, काकलेने चन्द्रहार,
काने तोर दिब जोडा दूल॥
कुङ्कुम चन्दन चुआ, बाटा भरे पान गुआ,
राङ्गा मुख राङ्गा हबे रागे।
सोनार पुत्तलि छेले, कोले तोर दिब फेले,
देखि भाल लागे कि ना लागे॥"

(तेरे बालों की राशि बाँधूँगी, चिकनी साडी पहनाऊँगी, तेरे जूड़े मे फूल झुला दूँगी। ललाट पर माँग की धार, कमर मे करधनी, तेरे कानो मे एक जोडी झूमके दूँगी। कुङ्कुम, चोआ-चन्दन और डब्बे भरे पान सुपारी; लाल मुँह राग से लाल हो जायगा। सोने की पुतली लडका तेरी गोद मे डाल दूँगी; देखूँ, तुझे अच्छा लगता है या नहीं।)

मृण्मयी ने कहा, "अच्छी बात है, समझी। पारस पत्थर जैसे छुआ, सोना हुई, बाल बाँधे, अच्छी साडी पहनी, जूड़े में फूल लगाया, कमर में करधनी पहनी, कानों मे झूमके झूमे, चन्दन, कुंकुम, चोया पान, सुपारी, सोने की पुतली तक, मिला। सोचो कि सब कुछ हुआ। यह होने पर भी क्या सुख है?"

श्या०—कहो तो, फूल खिलने पर क्या सुख है?

मृ०—आदमियों को देखने का सुख है, फूल को क्या?

श्यामासुन्दरी की मुखकान्ति गम्भीर हुई; सुबह की हवा में नीले कमल-जैसी बडी-बडी आँखें कुछ डोलीं; उन्होंने कहा, "फूल को क्या है, यह तो नहीं बता सकी। कभी फूल बनकर नहीं खिली; परन्तु अगर तुम्हारी हालत की कली में होती तो खिलकर सुख होता।"

श्यामा कुलीन-पत्नी है।

हम भी इसी अवकाश में पाठक महाशय से कह रक्खें कि कली का खिलने में ही सुख है। पुष्प-रस और पुष्पगन्ध का वितरण ही उसका सुख है। आदान-प्रदान ही पृथ्वी के सुख का मूल है। तीसरा मूल नहीं। मृण्मयी वन में रहकर यह भाव कभी हृदयङ्गम नहीं कर सकी; इसलिए बात का कोई जवाब नहीं दिया।

उन्हें नीरव देखकर सुन्दरी ने कहा, "अच्छा, ऐसा अगर नहीं, तो ज़रा सुनूँ—तुम्हारा सुख किसमें है?"

कुछ देर तक सोचकर मृण्मयी ने कहा, "मैं नहीं कह सकती। जान पड़ता है, समुद्र के किनारे उन्हीं वनों में विचरूँ तो मुझे सुख हो।"

श्यामासुन्दरी कुछ विस्मिता हुईं। उन लोगों की ख़ातिर से मृण्मयी को उपकार नहीं पहुँचा, इससे कुछ क्षुब्ध हुईं। कुछ नाराज़ हुईं। कहा, "अब लौट जाने का उपाय?"

मृ०—उपाय नहीं।

श्या०—तो क्या करोगी?

मृ०—अधिकारी कहते थे, "यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।"

श्यामासुन्दरी हँसती हुई, साड़ी होठों से लगाकर बोली, "जी हाँ, पण्डित जी, क्या हुआ?"

मृण्मयी ने साँस छोड़कर कहा, "जो कुछ विधाता करायेंगे, वही करूँगी। जो कुछ भाग्य में है, वही होगा।"

श्या०—क्यों, भाग्य में और क्या है? भाग्य में सुख है। तुम लम्बी साँस क्यों छोड़ती हो?

मृण्मयी ने कहा, "सुनो; जिस दिन स्वामी के साथ चली, चलने के समय मैं भवानी के पदों पर त्रिपत्र रखने गई। मैं माँ के पादपद्मों पर त्रिपत्र बिना दिये कोई काम नहीं करती थी। अगर

काम में शुभ होने को होता था तो माँ बिल्वपत्र धारण कर लेती थीं। यदि अमङ्गल होने की सम्भावना होती थी, तो त्रिपत्र गिर जाता था। अजाने व्यक्ति के साथ अजाने देश में आने की शंका होने लगी। भला-बुरा जानने के लिए माँ के पास गई। माँ ने त्रिपत्र धारण नहीं किया! अतएव भाग्य में क्या है, नहीं जानतो।"

मृण्मयी चुप हुई। श्यामासुन्दरी सिहर उठीं।

तीसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

भूतपूर्व

"कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः।"

—रत्नावली।

जब नवकुमार कपाल-कुण्डला को चट्टी से लेकर चले, तब मोती बीबी दूसरे रास्ते से बर्दवान गईं। जब तक मोती बीबी राह पूरी करती हैं, तब तक हम उनका पहला वृत्तान्त कुछ कह लें। मोती का चरित्र महादोष से कलुषित है। महत् गुण भी हैं। ऐसे चरित्र के सविस्तर वर्णन से पाठक महाशय असन्तुष्ट नहीं होंगे।

जब इनके पिता ने मुसलमान-धर्म ग्रहण किया, तब इनका हिन्दू नाम बदल गया, लुत्फ़-उन्निसा नाम हुआ। मोती बीबी किसी काल में भी इनका नाम नहीं था। सिर्फ़ कभी-कभी गुप्त-वेश में देश-विदेश विचरने के वक्त वह नाम ले लेती हैं। इनके पिता ढाके में आकर राजकार्य में नियुक्त हुए। परन्तु उनके वहाँ अपने देश के आदमी बहुत थे। देश की समाज में समाज से गिरकर रहना सब लोग मञ्ज़ूर नहीं करते। अस्तु, कुछ दिनों तक सूबेदार से तरक़्क़ी पाते हुए, उनके दोस्त कितने ही उमरा के नाम ख़त लेकर सपरिवार आगरा चले गये। अकबरशाह से किसी के गुण अविदित नहीं रहते थे। जल्द उन्होंने इनके गुण ग्रहण किये।

लुत्फ़उन्निसा के पिता जल्द ऊँचा पद पाकर आगरे के बड़े उमरा में गिने जाने लगे। इधर लुत्फ़उन्निसा की उम्र बढ़ने लगी। आगरा आकर वे फ़ारसी, संस्कृत, नाचना-गाना, रसवाद आदि में सुशिक्षिता हुईं। राजधानी की असंख्यों रूपवती और गुण-वतियों में बड़ी हुई हो चलीं। दुर्भाग्य से विद्या के सम्बन्ध में उनकी जैसी शिक्षा हुई थी, नीति के सम्बन्ध में उसका कुछ भी नहीं हुआ था। लुत्फ़उन्निसा की उम्र पूरी होते होते ज़ाहिर होने लगा कि उनकी मनोवृत्तियाँ दुर्दम-वेगवती हैं। इन्द्रिय-निग्रह की ज़रा भी ताक़त नहीं। इच्छा भी नहीं। भले और बुरे पर एक-सी प्रवृत्ति है। यह काम अच्छा है, या बुरा, ऐसा विचार कर वह काम में नहीं लगतीं; जो कुछ अच्छा लगता है करती हैं; जब अच्छे काम से जी हल्का होता है, तब अच्छा काम करती हैं; जब बुरे काम को जी मचलता है, तब बुरे काम करती हैं; जवानी में मनोवृत्तियों के दुर्दम होने पर जो दोष पैदा होते हैं, लुत्फ़उन्निसा में हुए। उनका पहला पति मौजूद है, उमरा में कोई निकाह के लिए राज़ी नहीं हुआ। वे भी निकाह की वैसी अनुरागिणी नहीं हुईं। मन ही मन सोचा, फूल-फूल पर बैठनेवाली मक्खी के पर क्यों नोचूँ? पहले कानोंकान ख़बर उड़ती रही, फिर कलंक का टीका लगा। उनके पिता ने आरी आकर उन्हें घर से निकाल दिया।

लुत्फ़उन्निसा एकान्त में जिन पर कृपा करती थीं, उनमें शाह-ज़ादा सलीम एक आदमी हैं। एक अमीर के कुल को कलंक लगने पर अपत्नुपाती पिता के कोप में पड़ना पड़ता है, इस आशंका से सलीम अब तक लुत्फ़उन्निसा को अपनी अवरोधवासिनी नहीं बना सके। अब सुयोग मिला। राजपूत-पति मानसिंह की बहन युवराज की प्रधान महिषी थीं। युवराज ने लुत्फ़उन्निसा को उनकी

प्रधान सहचरी बना दिया। लुत्फ़उन्निसा बेगम की सखी हुई आँख ओट युवराज की कृपापात्री।

लुत्फ़उन्निसा जैसी बुद्धिमती महिला थोड़े ही दिनों में राजकुमार का हृदय अधिकृत कर लेगी, यह सहज ही समझ में आ सकता है। सलीम के चित्त पर उसका प्रभुत्व अप्रतिद्वन्द्वी हो गया इस तरह कि समय आने पर लुत्फ़उन्निसा उनकी पटरानी होंगी, यह लुत्फ़उन्निसा की निश्चित प्रतिज्ञा हुई। केवल लुत्फ़उन्निसा की स्थिर प्रतिज्ञा हुई, ऐसी बात नहीं, सभी पुरवासियों को यह सम्भव मालूम दिया। ऐसी ही आशा के स्वप्न में लुत्फ़उन्निसा जीवन पार कर रही थीं, ऐसे समय नींद टूटी। शाह अकबर के ख़ज़ानची (एतमादउद्दौला) ख़्वाजा ग़यास की लड़की मेहरुन्निसा मुसलमान कुल की सबसे सुन्दरी है। एक दिन ख़ज़ानची ने शाहज़ादे सलीम और दूसरे बड़े-बड़े व्यक्तियों को न्यौता देकर अपने घर बुलाया। उसी दिन मेहरुन्निसा के साथ सलीम की मुलाक़ात हुई और उसी दिन सलीम मेहरुन्निसा को अपना दिल दे दिये। इसके बाद जो कुछ घटा था, वह इतिहास पाठक मात्र को मालूम है शेर अफ़गन नाम के एक बड़े बलवान् अमीर के साथ कोषाध्यक्ष की कन्या का सम्बन्ध पहले ही निश्चित हो चुका था। सलीम ने अनुराग से अन्ध होकर वह सम्बन्ध तोड़ देने के लिए पिता से प्रार्थना की। परन्तु निष्पक्ष पिता से केवल उन्हें तिरस्कार मिला फलतः सलीम को उस समय के लिए निरस्त होना पड़ा। निरस्त तो हुए, लेकिन आशा नहीं छोड़ी। शेर अफ़गन के साथ मेहरुन्निसा की शादी हो गई। परन्तु सलीम की चित्त-वृत्तियाँ लुत्फ़उन्निसा के नखदर्पण पर थीं, वे निश्चित रूप से समझ गई थीं कि शेर अफ़गन की हज़ार जानें भी हों, तो भी उसका निस्तार नहीं। अकबर शाह की मृत्यु होने पर उसका भी प्राणान्त होगा

मेहरुन्निसा सलीम की महिषी होंगी। लुत्फ़उन्निसा ने सिंहासन की आशा छोड़ दी।

मुसलमान-सम्राट्-कुल-गौरव अकबर की आयु समाप्त हो आई। जिस प्रचण्ड सूर्य की प्रभा से तुरकिस्तान से ब्रह्मपुत्र तक प्रकाश फैला रहता था, वह सूर्य अस्तगामी हुआ। इस समय लुत्फ़उन्निसा ने अपने बड़प्पन की रक्षा के लिए एक दुस्साहसिक संकल्प किया।

राजपूतपति राजा मानसिंह की बहन सलीम की बड़ी रानी हैं। ख़ुसरू उनका लड़का है। एक दिन उनके साथ अकबर शाह के पीड़ित शरीर के सम्बन्ध में लुत्फ़उन्निसा की बातचीत हो रही थी। राजपूत-कन्या इस समय बादशाह-पत्नी होंगी, इस प्रसंग पर लुत्फ़उन्निसा उनका अभिनन्दन कर रही थीं। जवाब में ख़ुसरू की माँ ने कहा, "बादशाह की महिषी होने पर मनुष्य-जन्म सार्थक है सही, परन्तु जो बादशाह की माता हैं, वे सबसे ऊपर हैं।" उत्तर सुनते ही पहले की न सोची हुई एक अभिसन्धि लुत्फ़उन्निसा के हृदय में उठी। उन्होंने जवाब दिया, "वैसा ही क्यों न हो? वह भी तो आपकी इच्छा पर है।" बेगम ने पूछा, "वह क्या?" चतुरा ने जवाब दिया, "युवराज के पुत्र ख़ुसरू को सिंहासन पर बैठाइए।"

बेगम ने कोई जवाब नहीं दिया। उस रोज़ यह प्रसङ्ग फिर नहीं उठा। परन्तु कोई यह बात भूलीं नहीं। पति की जगह पुत्र सिंहासन पर बैठे, यह बेगम का अनभिमत नहीं। मेहरुन्निसा के प्रति सलीम का अनुराग लुत्फ़उन्निसा के लिए जैसा हृदय का शैल है, बेगम के लिए भी वैसा ही है। मानसिंह की बहन आधुनिक तुर्क लड़की की आज्ञानुवर्तिनी हो रहेंगी, वह अच्छा क्यों लगेगा? लुत्फ़उन्निसा का भी इस संकल्प में उद्योगिनी होने का गहरा तात्पर्य था। दूसरे दिन फिर यह प्रसंग उठा। दोनों का मत निश्चित हुआ।

सलीम को छोड़कर अकबर का ख़ुसरू को सिंहासन पर बैठाना असम्भाव्य मालूम दे, ऐसा कोई कारण नहीं था। यह बात लुत्फ़उन्निसा ने बेगम के दिल में अच्छी तरह बैठा दी। उन्होंने कहा, "मोग़लों का साम्राज्य राजपूतों के बाहुबल से स्थापित है; उस राजपूत जाति के चूड़ामणि राजा मानसिंह हैं, वे ख़ुसरू के मामा हैं; और मुसलमानों में सबसे बड़े ख़ाँ आज़िम हैं, वे प्रधान मन्त्री हैं, वे ख़ुसरू के ससुर हैं; ये दोनों व्यक्ति अगर उद्योग करेंगे तो कौन इनका अनुवर्ती नहीं होगा? और युवराज सिंहासन भी किसके बल से प्राप्त करेंगे? राजा मानसिंह को इस काम में व्रती करने का आप पर भार है। ख़ाँ आज़िम और दूसरे मुसलमान उमरा को इधर लाना मेरे ज़िम्मे आपके आशीर्वाद से मैं कामयाब हूँगी, परन्तु एक आशंका है कि कहीं सिंहासन पर बैठकर, ख़ुसरू इस दुश्चारिणी को पुर से बाहर न निकाल दें।"

बेगम अपनी सखी का अभिप्राय समझीं। हँसकर कहा, "तुम आगरे में जिस अमीर की गृहिणी होना चाहोगी, वही तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा। तुम्हारे पति पंचहज़ारी मनसबदार होंगे।"

लुत्फ़उन्निसा ख़ुश हुईं। यही उनका उद्देश्य था। यदि राजपुरी में सामान्य पुरस्त्री की तरह रहना पड़ा, तो प्रति पुष्प-विहारिणी मधुकरी के पंख काटने पर क्या सुख हुआ? यदि स्वाधीनता छोड़नी पड़ी तो बाल्यसखी मेहरुन्निसा के दासीत्व में क्या सुख हुआ? इसकी अपेक्षा किसी राजपुरुष की सर्वमयी गृहिणी होना गौरव का विषय है।

केवल इसी लोभ से लुत्फ़उन्निसा इस कर्म में प्रवृत्त नहीं हुईं। सलीम उनकी उपेक्षा कर मेहरुन्निसा के लिए इतने व्यस्त हैं, इसका बदला चुकाना भी उनका उद्देश्य है।

ख़ाँ आज़िम आदि दिल्ली के उमरा लुत्फ़उन्निसा के बहुत ही बाध्य थे। ख़ाँ आज़िम अपने दामाद की भलाई की ओर झुकेंगे यह विचित्र नहीं। वे तथा और-और उमरा सम्मत हुए; ख़ाँ आज़िम ने लुत्फ़उन्निसा से कहा, "सोचो, यदि किसी असुयोग से हम लोग कृतकार्य न हों तो हमारी-तुम्हारी रक्षा नहीं। इसलिए जान बचाने का एक रास्ता रखना अच्छा है।"

लुत्फ़उन्निसा ने पूछा, "आपका क्या परामर्श है?" ख़ाँ आज़िम ने कहा, "उड़ीसा के अलावा दूसरा आश्रय नहीं। केवल वहीं मोग़लों का शासन उतना प्रखर नहीं। उड़ीसा की सेना हमारे हाथ में रहे, यह ज़रूरी है। तुम्हारे भाई उड़ीसा के मनसबदार हैं। मैं कल प्रचार करूँगा कि वे लड़ाई में ज़ख़्मी हो गये हैं। तुम उन्हें देखने के बहाने कल ही उड़ीसा को रवाना हो जाओ। वहाँ जो कुछ करना है, वह करके जल्द लौट आओ।"

लुत्फ़उन्निसा इस परामर्श पर सम्मत हुईं। वे उड़ीसा आकर जब लौट रही थीं, तब उनसे पाठक महाशयों की मुलाक़ात हुई है।

दूसरा परिच्छेद

दूसरे रास्ते

"जे माटीते पड़े लोके उठे ताइ धरे।
बारेक निराश होये केवा कोथा मरे॥
तूफाने पतित किन्तु छाड़िय ना हाल।
आजिके विफल हलो, ह'ते पारे काल॥"

—नवीन तपस्विनी।

जिस दिन नवकुमार को विदा कर मोती बीबी या लुत्फ़उन्निसा बर्दवान की ओर बढ़ीं, उस दिन वे बर्दवान तक पहुँच नहीं सकीं। दूसरी चट्टी में ठहरीं। शाम को पेशमन के साथ एक जगह बैठे हुए बात चीत हो रही थी, ऐसे वक़्त एकाएक मोती ने पेशमन से पूछा, "पेशमन! मेरे पति को तुमने कैसा देखा?"

पेशमन कुछ तअज्जुब में आकर बोली, "कैसा और देखूँगी?"

मोती ने कहा, "सुन्दर पुरुष है या नहीं?"

नवकुमार की तरफ़ से पेशमन को विशेष रूप से विराग हो गया था। जो गहने मोती ने कपाल-कुण्डला को दिये थे, उनकी तरफ़ पेशमन का विशेष लोभ था। मन में भरोसा था कि एक दिन माँग लूँगी। वह आशा निर्मूल हो गई थी; इसलिए कपाल-कुण्डला और उसके पति के प्रति उसकी बड़ी विरक्ति थी। स्वामिनी के प्रश्न का उत्तर दिया, "दरिद्र ब्राह्मण फिर सुन्दर और असुन्दर क्या?"

सङ्गिनी के मन का भाव समझकर हँसते हुए मोती ने कहा, "दरिद्र ब्राह्मण अगर अमीर हो जाय तो सुन्दर पुरुष होगा या नहीं ?"

पे०—वह फिर क्या ?

मो०—क्यों तुम नहीं जानतीं, बेगम ने स्वीकार किया है कि ख़ुसरू अगर बादशाह हुए तो मेरे पहले स्वामी अमीर होंगे ?

पे०—यह तो जानती हूँ, लेकिन तुम्हारे पहले पति अमीर क्यों होंगे ?

मो०—फिर मेरे और कौन पति हैं ?

पे०—जो नये होंगे।

मोती कुछ हँसकर बोलीं, "मेरी जैसी सती के दो पति हुए तो बड़ी अन्याय की बात होगी"—"वह कौन जा रहा है ?" पेशमन ने उसे पहचाना। वह आगरे के रहनेवाले ख़ाँ आज़िम का आश्रित व्यक्ति था। दोनों व्यस्त हुईं। पेशमन ने उसे बुलाया। उस आदमी ने लुत्फ़उन्निसा को सलाम कर एक पत्र दिया। कहा, "पत्र लेकर उड़ीसा जा रहा था। पत्र ज़रूरी है।"

पत्र पढ़कर मोती बीबी की आशा और भरोसे सब अन्तर्हित हो गये। पत्र का मर्म यह है :—

"हमारा प्रयत्न विफल हुआ। मृत्यु के समय भी अकबरशाह ने अपने बुद्धिबल से हमें परास्त किया है। वे परलोक सिधार गये हैं। उनकी आज्ञा से कुमार सलीम अब जहाँगीरशाह हुए हैं। तुम ख़ुसरू के लिए उलझन में न पड़ो। इस मामले में कोई तुम्हारी दुश्मनी न कर सके, इसकी कोशिश के लिए तुम जल्द आगरा लौट जाओ।"

अकबरशाह ने जिस उपाय से यह षड्यन्त्र निष्फल किया था, वह इतिहास में लिखा है। इस जगह उस वर्णन की आवश्यकता नहीं।

पुरस्कार देकर दूत को विदाकर मोती ने पेशमन को पत्र सुनाया। पेशमन ने पूछा, अब उपाय क्या है?

मोती०—अब और उपाय नहीं।

पे०—(कुछ देर सोचकर) अच्छा है, क्या मुज़ायक़ा, जैसी थीं, वैसी ही रहोगी; मोग़ल-बादशाह की पुरस्त्री भी दूसरे राज्य की पटरानी से बड़ी है।

मोती०—(कुछ हँसकर) वैसा अब नहीं हो रहा। अब उस राजपुर में और नहीं रह सकूँगी। जल्द ही मेहरुन्निसा का जहाँगीर से निकाह होगा। मेहरुन्निसा को मैं उसके किशोरकाल से अच्छी तरह जानती हूँ। एक बार वह पुरवासिनी हुई तो वही बादशाह होगी। जहाँगीर बादशाह नाममात्र को रहेंगे। मैंने उनका सिंहासन पर चढ़ने का रास्ता रोका था, यह बात छिपी नहीं रहेगी। तब मेरी क्या दशा होगी?

परेशमन प्रायः रोने को होकर बोली, "तो फिर क्या होगा?"

मोती ने कहा, "एक भरोसा है। मेहरुन्निसा का चित्त जहाँगीर की तरफ़ से कैसा होगा? जैसी उसकी दृढ़ता है, उससे यदि वह जहाँगीर के प्रति अनुरागिणी न होकर पति के प्रति यथार्थ स्नेहशालिनी हो, तो जहाँगीर शत? शेर अफ़गन मारने पर भी मेहरुन्निसा को नहीं पायेंगे। और अगर मेहरुन्निसा जहाँगीर की सही अभिलाषिणी होगी, तो फिर कोई भरोसा नहीं।"

रे०—मेहरुन्निसा का मत किस तरह समझोगी?

मोती ने हँसकर कहा, "लुत्फ़उन्निसा को असाध्य क्या है? मेहरुन्निसा मेरी बाल्यसखी है, कल बर्दवान जाकर उसके यहाँ दो रोज़ ठहरूँगी।"

पे०—अगर मेहरुन्निसा बादशाह की अनुरागिणी नहीं हुई, तो क्या करोगी?

मो०—पिता कहा करते हैं, "क्षेत्रे कर्म विधीयते।"

दोनों कुछ देर नीरव रहीं। ईषत् हँसी से मोती के ओष्ठाधर कुञ्चित होने लगे। पेशमन ने पूछा, "हँस क्यों रही हो?"

मोती ने कहा, "कोई नया भाव आ रहा है।"

पे०—कैसा नया भाव?

मोती ने वह पेशमन से नहीं कहा।

तीसरा परिच्छेद

"श्यामादन्यो नहि नहि नहि प्राणनाथो ममास्ति।"

इस समय शेर अफ़गन बङ्गाल के सूबेदार के अधीन बर्दवान में एक महकमे के अफ़सर की हैसियत से रहते थे। मोतीबीबी बर्दवान आकर शेर अफ़गन के यहाँ पहुँची। शेर अफ़गन ने सपरिवार बड़े समारोह से उन्हें टिकाया। जब शेर अफगन और उनकी स्त्री मेहरुन्निसा आगरे में रहते थे, तब मोतीबीबी उनकी आँखों में विशेष परिचिता थीं। मेहरुन्निसा से उनका ख़ास स्नेह था। बाद को दोनों दिल्ली के सिंहासन के लिए प्रतियोगिनी हुई थीं। अब एक जगह होने पर मेहरुन्निसा मन ही मन सोचने लगीं, "भारतवर्ष का कर्तृत्व विधाता ने किसके सर लिखा है? विधाता ही जानते हैं और सलीम जानते हैं और कोई और अगर जानती है तो यह लुत्फ़उन्निसा है। देखूँ, लुत्फ़उन्निसा क्या कुछ ज़ाहिर नहीं करेगी?"

मेहरुन्निसा उस समय, भारतवर्ष मे प्रधान रूपवती और गुणवती थीं, ऐसी ख्याति पाई थी। सही-सही, वैसी रमणी भूमण्डल में थोड़ी ही पैदा हुई हैं। ख़ूबसूरती में इतिहास-प्रसिद्ध सुन्दरियों में उनकी श्रेष्ठता ऐतिहासिक मात्र स्वीकार करते हैं। किसी प्रकार की विद्या में उस समय के पुरुषों में थोड़े भी उनसे ज़्यादा जानकार शायद ही थे। नृत्यगीत में मेहरुन्निसा अद्वितीया थीं। कविता रचने या चित्र-लेखन में भी वे सबका मन मोह लेती थीं। उनकी सरस बातें उनके सौन्दर्य से भी मोहमयी थीं। मोती भी इन

गुणों में घटकर नहीं थीं। आज ये दोनों चमत्कारिणी एक दूसरी का मन जानने के लिए उत्सुक हुईं।

मेहरुन्निसा अपने ख़ास कमरे में बैठी हुई तस्वीर खींच रही थीं। मोती मेहरुन्निसा की पीठ के पास बैठी तस्वीर खींचना देख रही थी और पान चबा रही थी। मेहरुन्निसा ने पूछा, "तस्वीर कैसी बन रही है?" मोतीबीबी ने जवाब दिया, "तुम्हारी तस्वीर जैसी आती है, वैसी ही। दूसरा कोई तुम्हारी तरह का चितेरा नहीं, यही दुःख है।"

मे०—यह अगर सच है तो दुःख की बात क्या है?

मो०—तुम्हारे जैसा दूसरा कोई चितेरा होता तो तुम्हारे इस मुख का आदर्श रख सकता था।

"क़ब्र की मिट्टी में इस मुख का आदर्श रहेगा।" मेहरुन्निसा ने ये बातें कुछ गम्भीरता से कहीं।

मो०—बहन, आज मन की स्फूर्ति की इतनी कल्पना क्यों है?

मे०—स्फूर्ति की कल्पना कहाँ? लेकिन तुम मुझे कल सुबह छोड़ जाओगी, यही मैं कैसे भूलूँ? दो रोज़ और रहकर तुम मुझे चरितार्थ क्यों नहीं करोगी?

मो०—सुख में किसकी असाध है। साध्य में अगर होता तो मैं क्यों जाती? परन्तु मैं दूसरे के अधीन हूँ, कैसे रहूँगी?

मे०—मेरे लिए तुम्हें अब प्यार तो और रहा नहीं, रहता तो तुम किसी तरह रह भी जातीं। आईं तो रह क्यों नहीं सकतीं?

मो०—मैंने तो सब बातें कह दी हैं। मेरे भाई मोग़लों की सेना में मनसबदार हैं। वे उड़ीसा में पठानों से लड़ाई में घायल होकर संकटापन्न अवस्था में थे। मैं उन्हीं की विपत्ति का संवाद पाकर बेगम की आज्ञा से उन्हें देखने आई थी। उड़ीसा में बहुत

देर कर दी। अब और देर करना, ठीक नहीं। तुमसे बहुत दिनों से मुलाक़ात नहीं हुई थीं, इसलिए दो दिन रह जा रही हूँ।

मे०—बेगम के पास कितने दिन में पहुँचने की बात स्वीकार कर आई हो?

मोती समझीं, मेहरुन्निसा व्यङ्ग कर रही हैं। मार्जित अथच मर्मभेदी व्यङ्ग में मेहरुन्निसा जैसी निपुण हैं, मोती वैसी नहीं। परन्तु अप्रतिभ होनेवाली औरत भी नहीं। उन्होंने जवाब दिया, "दिन निश्चित करके तीन महीने का रास्ता पार करना सम्भव थोड़े ही है? परन्तु काफ़ी देर कर दी है, और भी देर करने पर असन्तोष का कारण पैदा हो सकता है।"

मेहरुन्निसा अपनी संसार को मोह लेनेवाली हँसी हँसकर बोलीं, "किसके असन्तोष की आशंका कर रही हो? युवराज के या उनकी रानी के?"

मोती कुछ अप्रतिभ होकर बोलीं, "इस लज्जाहीना को क्यों और लजा रही हो? दोनों का असन्तोष हो सकता है।"

मे०—परन्तु पूछती हूँ, तुम ख़ुद बेगम नाम क्यों नहीं धारण करतीं? सुना था, शाहज़ादा सलीम तुम्हें ब्याहकर ख़ास बेगम बनायेंगे, इसका कहाँ तक हुआ?

मो०—मैं तो सहज ही पराधीना हूँ। फिर भी जितनी स्वतन्त्रता है, उसे क्यों नष्ट करूँ? बेगम की सङ्गिनी हूँ, इसलिए अनायास उड़ीसा आ सकी, सलीम की बेगम होती तो क्या उड़ीसा आ सकती?

मे०—जो दिल्लीश्वर की प्रधान महिषी होंगी, उन्हें उड़ीसा आने की ज़रूरत?

मो०—सलीम की प्रधान महिषी हूँगी, ऐसी स्पर्धा कभी नहीं करती। इस मुल्क हिन्दोस्तान में अकेली मेहरुन्निसा दिल्लीश्वर की प्राणेश्वरी होने के उपयुक्त है।

मेहरुन्निसा ने मुँह झुका लिया। बहुत देर तक निरुत्तर रह-कर कहा, "बहन! मैं ऐसा नहीं सोचती कि तुमने मुझे पीड़ा पहुँ-चाने के लिए ऐसा कहा, या मेरा मन समझने के लिए कहा। परन्तु तुमसे मेरी यह भीख है कि मैं शेर अफ़गन की बीवी हूँ और तन-मन-वाणी से उनकी दासी हूँ, यह भूलकर तुम बातचीत न करना।"

लाज से रहित मोती इस तिरस्कार से अप्रतिभ नहीं हुईं। बल्कि और भी उन्हें सुयोग मिला। कहा, "पति के साथ ही तुम्हारी जान है, यह मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। इसी लिए छल से यह प्रसङ्ग तुम्हारे सामने उठाने की हिम्मत की। सलीम अब तक तुम्हारे रूप का मोह भूल नहीं सके, यही बात कहना मेरा उद्देश्य था। सावधान रहना।"

मे०—अब समझी। परन्तु किस बात की आशंका?

मोती कुछ इधर-उधर करके बोलीं, "वैधव्य की आशंका।"

यह बात कहकर मोती मेहरुन्निसा के मुँह की तरफ़ तेज़ निगाह से देखती रहीं, परन्तु डर या आनन्द का कोई चिह्न वहाँ देखने को नहीं मिला। मेहरुन्निसा ने दर्प से कहा, "वैधव्य की आशंका! शेर अफ़गन आत्म-रक्षा में अक्षम नहीं। ख़ास तौर से—अकबर बादशाह के राज्य में उनका पुत्र भी बिना क़सूर दूसरे की जान लेकर नहीं बच सकेगा।"

मो०—सही है, परन्तु आगरे की हाल की ख़बर यह है कि बादशाह अकबर का शरीर नहीं रहा। सलीम सिंहासन पर बैठे हैं। दिल्लीश्वर का दमन कौन करेगा?

मेहरुन्निसा ने और कुछ नहीं सुना। उनके सारे अङ्ग थरथराने लगे। फिर आँखें झुका लीं। आँखों से आँसुओं की धारा बहती रही। मोती ने पूछा, "रोती क्यों हो?"

मेहरुन्निसा ने साँस छोड़कर कहा, "सलीम भारत के सिंहासन पर हैं, मैं कहाँ ?"

मोती की कामना सिद्ध हुई। उन्होंने कहा, "तुम आज भी युवराज को बिलकुल भूल नहीं सकीं ?"

मेहरुन्निसा ने गद्‌गद स्वर से कहा, "किसे भूलूँगी ? अपना जीवन भूल जाऊँगी, फिर भी युवराज को नहीं भूलूँगी। परन्तु सुनो बहन ! अकस्मात् मन के कपाट खुल गये; यह बात तुमने सुन ली; परन्तु तुम्हें मेरी क़सम है, यह बात जैसे दूसरे कानों में न जाय।"

मोती ने कहा, "अच्छा, ऐसा ही होगा। परन्तु जब सलीम सुनेंगे कि मैं वर्दवान आई थी, तब वे अवश्य पूछेंगे कि मेहरुन्निसा ने मेरी बातचीत क्या की, तब मैं क्या जवाब दूँगी ?"

कुछ देर सोचकर मेहरुन्निसा ने कहा, "यह कहना कि मेहरुन्निसा हृदय में उनका ध्यान करेगी। प्रयोजन होने पर उनके लिए अपनी जान भी देगी। परन्तु कभी अपने कुल की मर्यादा नहीं देगी। दासी का पति जीवित रहते वह कभी दिल्लीश्वर को मुँह नहीं दिखायेगी। और अगर दिल्लीश्वर से उसके पति का प्राणान्त हो तो पति के हत्यारे से इस जीवन में उसके लिए मिलना असम्भव है।"

यह कहकर मेहरुन्निसा उस जगह से उठ गईं। मोतीबीबी चकित हो रहीं। परन्तु मोतीबीबी की ही विजय हुई। मेहरुन्निसा के चित्त का भाव मोतीबीबी ने समझ लिया। मोतीबीबी की आशा-भरोसा मेहरुन्निसा कुछ भी नहीं मालूम कर पाईं। जो बाद को अपनी बुद्धि के प्रभाव से दिल्लीश्वर की भी ईश्वरी हुई थीं, वे मोती बीबी से पराजिता हुईं। इसका कारण यह है कि मेहरुन्निसा प्रणयशालिनी हैं, मोतीबीबी यहाँ केवल स्वार्थपरायणा।

मनुष्य-हृदय की विचित्र गति मोती बीबी अच्छी तरह समझती थीं। मेहरुन्निसा की बातों की आलोचना कर उन्होंने जो सिद्धान्त

किया, समय पर वही घटित हुआ। वे समझीं कि मेहरुन्निसा जहाँगीर की यथार्थ अनुरागिणी हैं इसलिए नारी-दर्प से इस समय जो कुछ भी कहें, रास्ता साफ़ होने पर वे मन की गति को रोक नहीं सकेंगी। बादशाह की इच्छा वे अवश्य सिद्ध करेंगी।

इस सिद्धान्त से मोती की आशा, भरोसे सब निर्मूल हो गये। परन्तु उससे मोती क्या बहुत दुखी हुईं? ऐसा नहीं। बल्कि कुछ सुख का अनुभव भी हुआ। क्यों ऐसा असम्भव चित्त-प्रसाद पैदा हुआ, यह मोती पहले समझ नहीं सकीं। वे आगरे के रास्ते चलीं। रास्ते में कुछ दिन बीते। उन्हीं कुछ दिनों में अपने चित्त का भाव समझीं।

चौथा परिच्छेद

राज-निकेतन में

"पत्नीभावे आर तुमि भेबे ना आमारे।"

—वीरांगना काव्य।

मोती आगरा पहुंची। अब उन्हें मोती कहने की आवश्यकता नहीं। कुछ दिनों में उनकी सारी चित्तवृत्तियाँ एक बार ही बदल गई थीं।

जहाँगीर से उनकी मुलाक़ात हुई। जहाँगीर ने उन्हें पहले की तरह आदर देकर उनके भाई का संवाद और रास्ते का कुशल पूछा। लुत्फ़उन्निसा ने जो कुछ मेहरुन्निसा से कहा था, वह सत्य हुआ। दूसरे दूसरे प्रसङ्गों के बाद शेर अफ़गान की बात सुनकर जहाँगीर ने पूछा, "मेहरुन्निसा के पास दो दिन थी, कह रही हो, मेहरुन्निसा ने मेरी बात-चीत क्या की?" लुत्फ़उन्निसा ने अकपट-हृदय से मेहरुन्निसा के अनुराग का परिचय दिया। बादशाह सुनकर नीरव हो रहे; उनकी स्फारित आँखों से दो-एक बूँद आँसू बहे।

लुत्फ़उन्निसा ने कहा, "जहाँपनाह! दासी ने शुभ संवाद दिया है। दासी के लिए अभी तक किसी पुरस्कार की आज्ञा नहीं हुई।"

बादशाह ने हँसकर कहा, "बीबी! तुम्हारी आकाङ्क्षा अपरिमित है।"

लु०—जहाँपनाह! दासी का क्या दोष है?

बाद०—दिल्ली के बादशाह को तुम्हारा ग़ुलाम बना दिया है, और भी पुरस्कार चाहती हो ?

लुत्फ़उन्निसा ने हँसकर कहा; "स्त्रियों की बड़ी साधें हैं।"

बाद०—फिर कौन सी साध हुई है ?

लु०—पहले बादशाह का हुक्म हो कि दासी की अर्ज़ सुनी जायगी।

बाद०—अगर राजकार्य में विघ्न न होता हो।

लु०—(हँसकर) एक के लिए दिल्लीश्वर के कार्य में विघ्न नहीं होता।

बाद०—तो मञ्ज़ूर है; साध कौन सी है, सुनूँ।

लु०—साध हुई है; एक ब्याह करूँगी।

जहाँगीर खुलकर हँसे। कहा, "यह नये ढँग की साध ज़रूर है। कहीं सगाई पक्की हुई है ?"

लु०—सो तो हुई है। सिर्फ़ बादशाह के हुक्म की देर है। बादशाह की मर्ज़ी न होने पर कोई भी सगाई पक्की नहीं।

बाद०—मेरी मर्ज़ी की क्या ज़रूरत है ? किसे इस सुख के समन्दर में बहाने को सोचा है ?

लु०—दासी ने दिल्लीश्वर की सेवा की है, इसलिए द्विचारिणी नहीं। दासी अपने पति से ही ब्याह करने की आज्ञा चाहती है।

बाद०—अच्छा ! इस पुराने नफर की दशा क्या होगी ?

लु०—दिल्लीश्वरी मेहरुन्निसा को दे जाऊँगी।

बाद०—दिल्लीश्वरी मेहरुन्निसा कौन ?

लु०—जो होंगी।

जहाँगीर ने मन में निश्चय किया कि मेहरुन्निसा दिल्लीश्वरी होगी, यह लुत्फ़उन्निसा ने ध्रुव समझ लिया है। इस कारण से, अपना

मनोभिलाष विफल हुआ सोचकर विराग से राजावरोध से अवसर लेना चाहती हैं।

यह समझकर जहाँगीर दुःखित होकर नीरव रहे। लुत्फ़उन्निसा ने कहा, "बादशाह की क्या इस सम्बन्ध में सम्मति नहीं?"

बाद०—मेरी असम्मति नहीं। परन्तु पति से फिर ब्याह करने की क्या ज़रूरत है?

लु०—भाग्य ऐसा था कि पहले ब्याह के बाद पति ने पत्नी के रूप से ग्रहण नहीं किया। अब जहाँपनाह की दासी को त्याग नहीं सकेंगे।

बादशाह रहस्य से हँसकर फिर गम्भीर हो गये। बोले, "प्रेयसी, तुम्हें अदेय मेरा कुछ भी नहीं। तुम्हारी अगर वही प्रवृत्ति हो तो तुम वैसा ही करो। परन्तु मुझे क्यों छोड़ जाओगी? एक आकाश में क्या चन्द्र-सूर्य दोनों नहीं रहते? एक वृन्त पर क्या दो फूल नहीं खिलते?

आँखें फाड़कर बादशाह की तरफ़ देखते हुए लुत्फ़उन्निसा ने कहा, "छोटे फूल खिल सकते हैं, परन्तु एक मृणाल पर दो कमल नहीं खिलते। आपके रत्न-सिंहासन के नीचे क्यों काँटा बनकर रहूँगी?"

लुत्फ़उन्निसा अपने आवास को चली गईं। उनकी ऐसी इच्छा क्यों पैदा हुई, यह उन्होंने जहाँगीर से ज़ाहिर नहीं किया। अनुभव से जैसा समझ में आता है, जहाँगीर वैसा ही समझकर चुप हो गये। गूढ़-तत्त्व कुछ नहीं समझे। लुत्फ़उन्निसा का हृदय पत्थर है। सलीम की नारी-हृदय को जीतनेवाली राजकान्ति भी कभी उनका मन नहीं मोह सकी। परन्तु इस बार पत्थर में भी कीट पैठ चुका था।

पाँचवाँ परिच्छेद

आत्म-मन्दिर में

"जनम अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल।
मे हो मधुर बोल स्रवनहि सूनल, स्रुतिपथ परस न भेल॥
कत मधु जामिनि रभस गमाओल, न बूझल कैसन केल।
लाख-लाख जुग हिय-हिय राखल, तइओ हिय जुड़ल न गेल॥
कत बिदगध जन रस अनुमोदइ, अनुभव काहू न पेख।
'विद्यापति' कहे प्रान जुड़ायेत लाखे न मिलल एक॥"

लुत्फ़उन्निसा ने अपने आवास में आकर प्रफुल्ल मुख से पेशमन को बुलाकर वेशभूषण उतारे। सुवर्ण-मुक्तादि-खचित वसन परित्याग कर पेशमन से कहा, "यह पोशाक तुम लो।"

सुनकर पेशमन कुछ विस्मित हुई। पोशाक बहुमूल्य है, अभी-अभी तैयार की गई है। कहा, "पोशाक मुझे क्यों? आज की क्या ख़बर है?"

लुत्फ़उन्निसा ने कहा, "अच्छी ख़बर है।"

पे०—यह समझ रही हूँ। मेहरुन्निसा का भय क्या दूर हो गया है?

लु०—दूर हो गया है। अब उस विषय की कोई चिन्ता नहीं।

पेशमन ने अत्यन्त आह्लाद प्रकाश करके कहा, "तो अब मैं बेगम की दासी हुई।"

लु०—तुम अगर बेगम की दासी होना चाहो तो मैं मेहरुन्निसा से कह दूँगी।

पे०—सो क्या ? आप फ़रमा रही हैं कि मेहरुन्निसा के लिए बादशाह की बेगम होने की कोई सम्भावना नहीं।

लु०—ऐसी बात मैंने नहीं कही। मैंने कहा है, उस विषय में मुझे कोई चिन्ता नहीं।

पे०—चिन्ता क्यों नहीं ? आप अगर आगरे की अकेली अधीश्वरी न हुईं तो सभी वृथा हुआ।

लु०—आगरे से सम्पर्क नहीं रक्खूँगी।

पे०—यह क्या ? मैं तो कुछ भी नहीं समझ रही हूँ। आज की अच्छी ख़बर तो फिर क्या है, समझाकर कहिए।

लु०—अच्छी ख़बर यह है कि मैं इस जीवन के लिए आगरा छोड़कर चली।

पे०—कहाँ जाइएगा ?

लु०—बङ्गाल जाकर रहूँगी। हो सका तो किसी भले आदमी की बीबी हूँगी।

पे०—ऐसी व्यङ्ग नया है सही, परन्तु सुनने पर प्राण काँप उठते हैं।

लु०—व्यङ्ग नहीं कर रही। मैं सचमुच ही आगरा छोड़कर चली। बादशाह से विदा ले आई हूँ।

पे०—ऐसी कुप्रवृत्ति आपकी क्यों हुई ?

लु०—कुप्रवृत्ति नहीं। बहुत दिन आगरा घूमी, क्या फल हुआ ? सुख की प्यास बचपन से बड़ी प्रबल थी। उस प्यास को बुझाने के लिए बङ्गाल छोड़कर यहाँ तक आई। इस रत्न को ख़रीदने के लिए क्या धन नहीं दे डाला मैंने ? कौन सा दुष्कर्म नहीं किया ? और जिस-जिस उद्देश्य से यहाँ तक किया, उसका कौन-सा हाथ में नहीं आया ? ऐश्वर्य, सम्पद्, धन, गौरव, प्रतिष्ठा, सभी तो प्रचुर परिमाण में भोग किया। इतना करके भी क्या हुआ ? आज यहाँ बैठकर कुल दिनों की मन ही मन गणना करके कह सकती हूँ कि एक दिन के लिए

भी सुखी नहीं हुई, एक मुहूर्त के लिए भी कभी सुखभोग नहीं किया। कभी परितृप्त नहीं हुई। केवल तृष्णा बढ़ती है। कोशिश करने पर और भी सम्पद्, और भी ऐश्वर्य प्राप्त कर सकती हूँ, परन्तु किस लिए? इन सब में अगर सुख होता तो इतने दिनों में एक दिन के लिए भी सुखी हुई होती। सुख की यह आकाङ्क्षा पहाड़ी निर्झरिणी की तरह पहले निर्मल है। त्रीणाधारा विजन प्रदेश से निकलती है, अपने गर्भ में ही छिपी रहती है, कोई जानता नहीं; अपने आप कलकल करती है, कोई सुनता नहीं। क्रमशः जितना चलती है, उतना देह बढ़ती है, उतनी पंकिल होती है। सिर्फ इतना ही नहीं, कभी फिर हवा बहती है, तरङ्ग उठती हैं, मगर-घड़ियाल आदि रहने लगते हैं। और भी देह बढ़ती है, जल और भी गँदला होता है, खारा होता है, अनगिनती सैकत चर रेगिस्तान जैसे नदी-हृदय में विराजते हैं, वेग मन्द पड़ जाता है, तब वह गँदला नदी-शरीर अनन्त समुद्र में कहाँ छिपता है, कौन कहेगा?

पे०—मैं तो इसका कुछ भी अर्थ नहीं समझ सकी। इन सबसे तुम्हें सुख क्यों नहीं होता?

लु०—क्यों नहीं होता, यह इतने दिन बाद समझी हूँ। तीन साल राजप्रासाद की छाँह में बैठे हुए जो सुख नहीं हुआ, उड़ीसा से लौटते समय राह में वह सुख एक रात में हुआ है। इसी से समझी हूँ।

पे०—क्या समझी?

लु०—मैं इतने दिनों तक हिन्दुओं की देवमूर्ति जैसी थी। बाहर सुवर्ण-रत्नादि से खचित, भीतर पत्थर। इन्द्रिय-सुख की खोज में आग के भीतर विचरण किया है, कभी आग स्पर्श नहीं किया। अब एक दफ़ा देखूँ, यदि पत्थर के भीतर खोजकर रक्तशिराविशिष्ट एक अन्तः-करण पाऊँ।

पे०—यह भी तो कुछ समझ नहीं सकी।

लु०—इस आगरे में कभी किसी को मैंने प्यार किया है?

पे०—(धीमी आवाज़ में) किसी को नहीं।

लु०—तो पत्थर की नहीं तो क्या ?

पे०—तो अब प्यार करने की तबियत हो तो प्यार क्यों नहीं करती ?

लु०—इच्छा तो है। इसी लिए आगरा छोड़कर जा रही हूँ।

पे०—इसकी क्या ज़रूरत है ? आगरे में क्या आदमी नहीं जो गवाँर-मूर्खों के देश जाओगी ? इस समय जो तुम्हें प्यार करते हैं, उन्हें क्यों नहीं प्यार करतीं ? रूप में कहो, धन में कहो, ऐश्वर्य में कहो, जिस तरह भी कहो दिल्ली के बादशाह से बड़ा पृथ्वी में कौन है ?

लु०—आकाश में चन्द्र-सूर्य रहते पानी अधोगामी क्यों है ?

पे०—क्यों है ?

लु०—क़िस्मत का लिखा !

लुत्फ़उन्निसा ने सब बातें खोलकर नहीं कहीं। पत्थर के भीतर आग पैठ चुकी थी। पत्थर पिघल चला था।

—

छठा परिच्छेद

चरणतल में

"कायमनः प्राण आमि सँपिव तोमारे।
भुक्त आमि राजभोग दासीर आलये॥"

—वीराङ्गना काव्य।

क्षेत्र में बीज पड़ने पर आप अङ्कुर होता है। जब अङ्कुर होता है, तब कोई जान नहीं पाता—कोई देख नहीं पाता। परन्तु एक बार बीज रोपित होने पर, रोपणकारी जहाँ भी रहे, क्रमशः अङ्कुर से पेड़ तक सर उठाता रहता है। आज पौधा अंगुल भर का है सिर्फ़, कोई देखकर भी नहीं देख पाता। क्रमशः पौधा बालिश्त भर का, हाथ भर का, दो हाथ का हुआ; फिर भी अगर किसी की स्वार्थ-सिद्धि की सम्भावना न रही, तो कोई नहीं देखता, देखकर भी नहीं देखता। दिन जाते हैं, महीने जाते हैं, वर्ष जाते हैं, क्रमशः उस पर आँखें पड़ती हैं। फिर मन न देनेवाली बात नहीं रहती,—क्रमशः पेड़ बड़ा होता है, उसकी छाँह में दूसरे पेड़ कमज़ोर होते हैं, यहाँ तक कि क्षेत्र में दूसरा पौधा नहीं रहता।

लुत्फ़उन्निसा का प्रणय इसी तरह बढ़ा था। पहले एक दिन अकस्मात् प्रणयभाजन से मुलाक़ात हुई, तब प्रणय-सञ्चार विशेष रूप से नहीं समझ सकी। लेकिन तभी अङ्कुर रह गया। इसके बाद फिर मुलाक़ात नहीं हुई। परन्तु आँख-ओट वही मुँह बार-बार याद आने लगा, स्मृतिपट पर उस मुख को चित्रित करना कुछ-कुछ सुखकर मालूम देने लगा। बीज में अङ्कुर

पैदा हुआ। मूर्ति की ओर अनुराग उठा। चित्त का धर्म यह है कि जो मानसिक कर्म जितने दफ़े किया जाता है, उस कर्म के लिए उतनी ही अधिक प्रवृत्ति होती है; वह कर्म क्रमशः स्वभावसिद्ध हो जाता है; लुत्फ़उन्निसा वह मूर्ति अहरहः मन में सोचने लगीं। दर्शन की तीव्र अभिलाषा पैदा हुई; साथ-साथ उनकी सहज स्पृहा का प्रवाह भी अनिवार्य हो गया। दिल्ली के सिंहासन की लालसा भी उनके निकट लघु हो गई। सिंहासन जैसे काम के बाणों से तैयार हुआ, आग से घिरा मालूम देने लगा। राज्य, राजधानी और राजसिंहासन, सब छोड़कर प्रिय-दर्शन के लिए दौड़ीं। वह प्रिय नवकुमार है।

इसी लिए लुत्फ़उन्निसा मेहरुन्निसा की आशानाशिनी बात सुनकर भी दुखी नहीं हुईं; इसी लिए आगरा आकर भी सम्पत्ति की रक्षा के लिए कोई यत्न नहीं किया; इसी लिए जन्म भर के लिए बादशाह से विदा ली।

लुत्फ़उन्निसा सप्तग्राम आईं। राजपथ के कुछ ही दूर नगर की एक अट्टालिका में डेरा डाला। राजपथ के पथिकों ने देखा, अकस्मात् यह अट्टालिका सुवर्ण-खचित वस्त्रों से भूषित, दास-दासियों से पूर्ण हो गई है। कमरे-कमरे की सजावट बड़ी मनोहर है। गन्धद्रव्य, गन्धवारि, कुसुमदाम सर्वत्र आमोद दे रहे हैं। सोने, चाँदी और हाथी के दाँतों से निर्मित, चित्रित, गृह शोभा के लिए नाना द्रव्य सब जगहों में प्रकाश भर रहे हैं। इसी तरह से सजे एक कमरे में लुत्फ़उन्निसा सर झुकाये हुए बैठी हैं; अलग आसन पर नवकुमार बैठे हुए हैं। सप्तग्राम में नवकुमार से लुत्फ़उन्निसा की और दो बार मुलाक़ात हो चुकी है; उसमें लुत्फ़उन्निसा का मनोरथ कहाँ तक सिद्ध हुआ था, वह आज की बातचीत से ज़ाहिर होगा।

नवकुमार कुछ देर तक नीरव रहकर बोले, "तो मैं अब चला। तुम और मुझे मत बुलाना।"

लुत्फ़उन्निसा ने कहा, "जाओ नहीं और कुछ रहो। मुझे जो कुछ कहना है, मैंने समाप्त नहीं किया।"

नवकुमार ने और भी कुछ प्रतीक्षा की, परन्तु लुत्फ़उन्निसा ने कुछ कहा नहीं। कुछ देर बाद नवकुमार ने पूछा, "और क्या कहोगी?" लुत्फ़उन्निसा ने कोई जवाब नहीं दिया। वे नीरव रहकर रोती रहीं।"

नवकुमार यह देखकर उठे, लुत्फ़उन्निसा ने उनका वस्त्राग्र धृत किया। नवकुमार ने कुछ विरक्ति से कहा, "कुछ कहो भी।"

लुत्फ़उन्निसा ने पूछा, "तुम क्या चाहते हो? संसार में क्या कुछ भी माँगने को नहीं? धन, सम्पद्, मान, प्रणय, रङ्ग, रहस्य, पृथ्वी में जिसे-जिसे सुख कहते हैं, सब दूँगी, किसी से भी उसका बदला नहीं चाहती; सिर्फ़ तुम्हारी दासी होना चाहती हूँ। तुम्हारी पत्नी हूँगी, यह गौरव भी नहीं चाहती, सिर्फ़ दासी हूँगी।"

नवकुमार ने कहा, "मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ, इस जन्म में दरिद्र ब्राह्मण ही रहूँगा। तुम्हारा दिया धन, सम्पद् लेकर यवनीजार नहीं हो सकूँगा।"

यवनीजार!—नवकुमार अब तक नहीं समझ सके कि यह रमणी उनकी पत्नी है। लुत्फ़उन्निसा अधोवदन रहीं। नवकुमार ने उनके हाथ से वस्त्र का छोर छुड़ा लिया। लुत्फ़उन्निसा ने फिर उनका वस्त्राग्र पकड़ा, कहा, "अच्छा, वह जाय। विधाता की अगर वही इच्छा है तो चित्त-वृत्तियों को अतल जल में डुबाऊँगी। और कुछ नहीं चाहती, एक बार तुम इस रास्ते से जाना, दासी सोचकर एक-एक बार दर्शन देना, केवल आँखों की परितृप्ति करूँगी।"

नव०—तुम यवनी हो, दूसरे की स्त्री हो, तुमसे ऐसे आलाप में भी दोष है। तुमसे अब मेरी मुलाक़ात नहीं होगी।

कुछ देर नीरव! लुत्फ़उन्निसा के हृदय में तूफ़ान चल रहा था। पत्थर की मूर्ति की तरह निःस्पन्द रहीं। नवकुमार के वस्त्र का छोर छोड़ दिया। कहा, "जाओ।"

नवकुमार चले। दो-चार क़दम सिर्फ़ चले, एकाएक लुत्फ़उन्निसा हवा से उखाड़े पेड़ की तरह उनके पैरों पर गिरीं। बाहुलता से दोनों चरण बाँधकर कातर स्वर से बोलीं, "निर्दय! मैं तुम्हारे लिए आगरे का सिंहासन छोड़कर आई हूँ, तुम मेरा त्याग न करो।"

नवकुमार ने कहा, "तुम फिर आगरा लौट जाओ, मेरी आशा छोड़ दो।"

इस जन्म में नहीं। लुत्फ़उन्निसा तीर की तरह खड़ी होकर दर्प से बोलीं, "इस जन्म में तुम्हारी आशा नहीं छोड़ूँगी।" सर उठाकर गर्दन कुछ टेढ़ी कर नवकुमार के मुँह की ओर अनिमेष आयत आँखों से देखकर राज-राजमोहिनी खड़ी हुईं। जो न टेढ़ा होनेवाला गर्व हृदय की आग में गल गया था, फिर उसकी ज्योति निकली; जो अजेय मानसिक शक्ति भारत के राज्यशासन की कल्पना में नहीं डरी, प्रणय की दुर्बल देह में वही शक्ति फिर संचारित हुई। मत्थे की नसें स्फीत होकर रमणीय रेखाओं में बदलीं; ज्योतिर्मयी आँखें सूर्य के करों से मुखर समुद्र के जल की तरह झुलसने लगीं; नथने काँपने लगे। स्रोत पर विहार करनेवाली राजहंसी जिस तरह गति-विरोधी के प्रति गर्दन टेढ़ी करके चढ़ी होती है, फणदलित होते ही फणिनी जिस तरह फन काढ़कर खड़ी होती है, वैसे ही उन्मादिनी यवनी मस्तक उठाकर खड़ी हुईं। कहा, "इस जन्म में नहीं, तुम मेरे ही होगे।"

कोप में आई उस नागिन की मूर्ति की तरफ़ देखते-देखते नवकुमार डरे। लुत्फ़उन्निसा की अनिर्वचनीय देहमहिमा इस समय जैसी देखी, वैसी और कभी नहीं देखी। परन्तु वह श्री वज्रसूचिका विद्युत् की तरह मनोमोहिनी थी, देखकर डर हुआ। नवकुमार चले जा रहे थे, तब सहसा एक और तेजोमयी मूर्ति उनके मन में आई। एक दिन नवकुमार अपनी पहली स्त्री पद्मावती से विरक्त होकर उन्हें शयनागार से निकालने को उद्यत हुए थे। द्वादशवर्षीया बालिका तब सदर्प उनकी ओर फिरकर खड़ी हुई थी, इसी तरह उसकी आँखें जल उठी थीं; इसी तरह ललाट में रेखा बन गई थी; इसी तरह नासारन्ध्र काँपे थे; इसी तरह सर हिला था। बहुत दिन वह मूर्ति याद नहीं आई, अब आई। वैसे ही सादृश्य अनुभूत हुआ। संशय में आकर नवकुमार ने सकुचित स्वर से धीरे-धीरे पूछा, "तुम कौन हो?"

यवनी की आँखों के तारे और विस्फारित हुए। "कहा, मैं पद्मावती हूँ।"

उत्तर की प्रतीक्षा न कर लुत्फ़उन्निसा दूसरी जगह चली गईं। नवकुमार भी अन्य मन से, कुछ शंकित होकर, अपने घर गये।

सातवाँ परिच्छेद

उपनगर-प्रान्त में

"—I am settled and bend up
Each corporal agent to this terrible feat."

– Macbeth

दूसरे कमरे में जाकर लुत्फ़उन्निसा ने द्वार बन्द कर लिया। दो दिन तक उस कमरे से नहीं निकलीं। इन दो दिनों में उन्होंने अपना कर्तव्याकर्तव्य निश्चित किया। निश्चित करके दृढ़प्रतिज्ञ हुईं। सूर्य तब अस्ताचलगामी थे। तब लुत्फ़उन्निसा पेशमन की सहायता से वेशभूषा कर रही थीं। तअज्जुब की वेश-भूषा थी। न पेशवाज़ है, न पाजामा, न ओढ़नी; नारी-वेश का कोई चिह्न नहीं। जो वेशभूषा की उसे आईने में देखकर पेशमन से कहा, "क्यों पेशमन, मुझे और पहचाना जाता है?"

पेशमन ने कहा, "किसकी मजाल?"

लु०—तो मैं चली। मेरे साथ जैसे कोई दास-दासी न जाय

पेशमन ने कुछ सङ्कुचित-चित्त से कहा, "यदि दास-दासी का अपराध क्षमा करें तो एक बात पूछना चाहती हूँ।"

लुत्फ़उन्निसा ने पूछा, "क्या?"

पेशमन ने कहा, "आपका उद्देश्य क्या है?"

लुत्फ़उन्निसा ने कहा, "फ़िलहाल कपाल-कुण्डला से उसके पति का चिरविच्छेद। बाद को वे मेरे होंगे।"

पे०—बीबी, अच्छी तरह सोच लीजिए; वह घना वन. रात हो आई है; आप अकेली हैं।

इस बात का कोई जवाब न देकर लुत्फ़उन्निसा घर से बाहर निकलीं। सप्तग्राम के जिस जनहीन वनमय उपनगर-प्रान्त में नवकुमार का घर है, उसी तरफ़ चलीं। उस प्रदेश में पहुँचते रात हो आई। नवकुमार के घर के कुछ ही दूर एक वन है। उसी के प्रान्त भाग में पहुँचकर एक पेड़ के नीचे बैठीं। कुछ देर तक बैठी रहकर जिस दुस्साहसिक कार्य में प्रवृत्त हुई थीं, उसके विषय में विचार करने लगीं। घटना-क्रम से उनकी न सोची हुई सहायता वहाँ हाज़िर हुई।

लुत्फ़उन्निसा जहाँ बैठी थीं, वहाँ से एक अविरत समोच्चारित मनुष्यकण्ठनिर्गत शब्द सुना। उठकर खड़ी होकर चारों तरफ़ निगाह दौड़ाकर देखा, तो वन के भीतर एक प्रकाश देख पड़ा। लुत्फ़उन्निसा हिम्मत में पुरुष से बढ़कर हैं, जहाँ आग जल रही है, वहाँ गईं। पहले पेड़ की आड़ से देखा, मामला क्या है? देखा, जो आग जल रही थी, वह होम की आग है। जो शब्द सुना था, वह मन्त्र-पाठ का शब्द है। मन्त्र में एक शब्द उनकी समझ में आया, वह एक नाम है। नाम सुनते ही लुत्फ़उन्निसा होम करनेवाले के पास जाकर बैठीं।

चौथा खण्ड

पहला परिच्छेद

शयनागार में

"राधिकार बेड़ी भाङ्ग ए मम मिनति।"

—व्रजाङ्गना काव्य।

लुत्फ़उन्निसा को आगरा जाने और वहाँ से सप्तग्राम लौटते प्रायः एक साल लगा। कपाल-कुण्डला एक साल से कुछ अधिक समय से नवकुमार की गृहिणी हैं। जिस दिन प्रदोष के समय लुत्फ़उन्निसा वन में थीं, उस दिन कपाल-कुण्डला अन्य मन से शयनकक्ष में बैठी थीं। पाठक महाशयों ने आलुलायितकुन्तला भूषणविहीना जिस कपाल-कुण्डला को देखा था, यह वह कपाल-कुण्डला नहीं। श्यामासुन्दरी की भविष्य-वाणी सही हुई है। पारस-पत्थर के छू जाने से योगिनी गृहिणी हुई है। अब उन असंख्य कृष्णोज्ज्वल भुजङ्गों के व्यूह जैसी आगुल्फलम्बित केशराशि के पीछे स्थूल वेणी सम्बद्ध हुई है। वेणी-रचना में भी शिल्प की पूर्णता लक्षित हो रही है। केशविन्यास में बहुत से सूक्ष्म कारुकार्य श्यामासुन्दरी के विन्यास-कौशल का परिचय दे रहे हैं। फूलों की माला भी नहीं छूटी, चारों ओर से मुकुट के मण्डल की तरह वेणी को घेरे हुए है। बालों का जो हिस्सा वेणी में नहीं आया, वह मस्तक पर एक सा ऊँचा नहीं रह गया; उसकी घँघरवाली छोटी छोटी

काली तरङ्गें बनाकर शोभा की गई है। मुखमण्डल अब केशों के भार से आधा छिपा नहीं; ज्योतिर्मय होकर शोभा पा रहा है; केवल जगह-जगह बन्धन से छुटी छोटी-छोटी अलकें उस पर स्वेदविजड़ित हो रही हैं। वर्ण उसी आधे चाँद की रश्मि-सा रुचिर। इस समय दोनों कानों में सोने के कर्णभूषण हिल रहे हैं। गले में सोने का हार। वर्ण से वे सब मुरझाये नहीं, आधे चाँद की कौमुदी की साड़ी पहने धरणी के अङ्गों में नैश-कुसुम जैसे शोभा पा रहे हैं। उनके पहनावे में सफ़ेद साड़ी है। वह सफ़ेद साड़ी आधे चाँद से हँसते आकाश में हल्के सफ़ेद बादल सी शोभा दे रही है।

रङ्ग वैसा ही आधे चाँद की कौमुदीवाला है सही, परन्तु जैसे पहले से कुछ सियाह है, जैसे आकाश के किनारे कहीं काला बादल देख पड़ा है। कपाल-कुण्डला अकेली नहीं बैठी थीं; सखी श्यामासुन्दरी पास बैठी थी। उन दोनों की आपस में बातचीत हो रही थी। उसका कुछ अंश पाठकों को सुनना होगा।

कपाल-कुण्डला ने कहा, "ननदोईजी और कितने दिन यहाँ रहेंगे?"

श्यामा ने कहा, "कल तीसरे पहर चले जायँगे। अहा, आज रात को अगर दवा ले रखती, तो भी उन्हें वश करके मनुष्य-जन्म सार्थक कर सकती। कल रात को बाहर निकली थी, इसलिए झाड़ और लातें खाईं, फिर आज किस तरह निकलूँगी?"

क०—दिन में ले आने पर क्यों नहीं होता?

श्या०—दिन में ले आने पर उसका फल क्या होगा? ठीक आधी रात को खुने बालों से लानी पड़ती है। सो भई, मन की साध मन में ही रही।

क०—अच्छा, मैं तो आज दिन में वह पेड़ पहचान आई हूँ, और जिस वन में होता है, वह भी देख आई हूँ। तुम्हें आज जाना नहीं होगा, मैं अकेली जाकर दवा ले आऊँगी।

श्या०—एक दिन जो कुछ हुआ, हुआ। रात को अब तुम बाहर न निकलना।

क०—इसके लिए तुम क्यों चिन्ता करती हो? सुना तो है, रात को घूमने की मेरी लड़कपन से आदत है। सोचकर देखो, अगर मेरी वह आदत न रहती, तो तुम्हारी मेरी चार आँखें एक न होतीं।

श्या०—उस डर से नहीं कह रही, परन्तु अकेली रात में वन-वन घूमना क्या गृहस्थ की बहू-बेटी के लिए अच्छा है? दो जनी जाने पर भी इतनी फटकार खाई, तुम अकेली जाओगी तो कोई बचाव होगा?

क० नुक़सान भी क्या है? तुमने क्या सोचा है, मैं रात को घर के बाहर पैर बढ़ाकर दुश्चरित्रा हो जाऊँगी?

श्या०—मैं ऐसा नहीं सोचती। परन्तु बुरे आदमी बुरा कहेंगे।

क०—कहें, इससे मैं बुरी नहीं हो जाऊँगी।

श्या०—सो तो नहीं होगी; परन्तु तुम्हें कोई बुरा कहेगा तो हमारे अन्तःकरण को क्लेश पहुँचेगा।

क०—ऐसा अन्याय क्लेश न पहुँचने दो।

श्या०—यह भी मैं कर सकूँगी, परन्तु दादा का क्यों दिल दुखाओगी?

कपाल-कुण्डला ने श्यामासुन्दरी के प्रति अपना स्निग्धोज्ज्वल कटाक्ष डाला। कहा, "इससे उनका दिल दुखे तो मैं क्या करूँगी? अगर मैं जानती कि औरत का ब्याह करना दासी होना है, तो कदापि विवाह न करती।"

इसके बाद बातें श्यामासुन्दरी की समझ में अच्छी तरह नहीं आईं, अपने काम में उठ गईं।

कपाल-कुण्डला आवश्यक गृह-कर्म में लगी। घर का काम पूरा करके दवा की खोज में घर से बाहर निकली। तब रात एक पहर से अधिक हो चुकी थी। रात चाँदनी। नवकुमार बाहर के बैठक में बैठे थे। कपाल-कुण्डला बाहर निकली जा रही है, यह झरोखे से उन्होंने देखा। वे भी कमरा छोड़कर बाहर निकले और आकर मृण्मयी का हाथ पकड़ा। कपाल-कुण्डला ने पूछा, "क्या है?"

नवकुमार ने पूछा, "कहाँ जा रही हो?" नवकुमार के स्वर में तिरस्कार की सूचना तक नहीं थी।

कपाल-कुण्डला ने कहा, "श्यामासुन्दरी पति को वशीभूत करने के लिए दवा चाहती है, मैं दवा की खोज में जा रही हूँ।"

नवकुमार ने पहले की तरह कोमल स्वर में कहा, "अच्छा, कल तो एक दफा गई थी, आज अब फिर क्यों?"

क०—कल खोजने पर नहीं मिली, आज फिर खोजूँगी।

नवकुमार ने बड़े कोमल भाव से कहा, "अच्छा, दिन में खोजने पर भी तो हो सकता है?" नवकुमार का स्वर स्नेह से भरा हुआ।

कपाल-कुण्डला ने कहा, "दिन में दवा फल नहीं देती।"

नव०—दवा खोजने की तुम्हें ज़रूरत क्या है? मुझे पेड़ का नाम बतला दो। मैं दवा ले आऊँगा।

क०—मैं पेड़ देखकर पहचान सकती हूँ, लेकिन नाम नहीं जानती। और तुम्हारे लाने से फल नहीं होगा। औरत को बाल खोलकर लाना पड़ता है। तुम दूसरे के उपकार में विघ्न न करो।

कपाल-कुण्डला ने ये बातें अप्रसन्नता से कीं। नवकुमार ने और रुकावट नहीं डाली। कहा, "चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

कपाल-कुण्डला ने गर्वित स्वरों से कहा, "आओ, मैं अविश्वासिनी हूँ या नहीं, अपनी आँखों देख जाओ।"

नवकुमार और कुछ नहीं कह सके। साँस के साथ कपाल-कुण्डला का हाथ छोड़कर घर लौट आये। कपाल-कुण्डला अकेली वन में पैठीं।

दूसरा परिच्छेद

काननतल

"————Tender is the night
And haply the queen moon is on her throne
Clustered around by all her stary fays ;
But here there is no Light

Keats

सप्तग्राम का यह भाग जङ्गली है, यह पहले ही कुछ-कुछ कहा जा चुका है। गाँव के कुछ दूर घना वन है। कपाल-कुण्डला अकेली एक जङ्गली सँकरी राह से दवा की खोज में चली। रात मधुर है, कहीं किसी तरह की आवाज़ नहीं आ रही। वसन्त की रात के आकाश में ठण्डी रश्मियों का चाँद चुपचाप सफ़ेद बादलों को पार कर रहा है। पृथ्वी में जङ्गली पेड़ और लताएँ उसी तरह चुपचाप शीतल चन्द्रकिरणों में विश्राम कर रहे हैं। चुपचाप पेड़ के पत्ते उन किरणों से प्रतिघात कर रहे हैं। चुपचाप लता-गुल्मों में श्वेत-कुसुमदल विकसित हो रहे हैं। केवल कहीं एक-आध बार के लिए विश्राम में बाधा पाये पक्षी के बाज़ फटकारने का शब्द होता है, कहीं क्वचित् सूखे पत्र के पतन का शब्द, कहीं नीचे सूखे पत्तों में उरग जातीय जीव के संसरण का शब्द है, कहीं बहुत दूर कुत्ते के भौंकने की आवाज़ है। ऐसा नहीं कि हवा बिलकुल नहीं चल रही. देह को स्निग्ध करनेवाली वसन्त की हवा, बहुत ही

मन्द, एकान्त निःशब्द केवल हवा; उसमें सिर्फ़ पेड़ों के सबसे ऊपर-वाले पत्ते हिल रहे थे, भूमि तक प्रणत 'श्यामा' लता केवल हिल रही थी, केवल नीले आसमान में विचरण करनेवाले छोटे सफ़ेद बादलों के टुकड़े धीरे-धीरे चल रहे थे। उस तरह की हवा के संस्पर्श से पहले के सुख की अस्पष्ट स्मृति केवल हृदय में थोड़ी-थोड़ी जग रही थी।

कपाल-कुण्डला की वैसी ही पूर्व स्मृति जग रही थी। बालू के शिखरों पर समुद्र के जल को छूकर जो मलयानिल उनकी लम्बी अलकों के मण्डल में खेलती थी, वह याद आई, निर्मल नील अनन्त गगन के प्रति आँख उठाकर उन्होंने देखा; वह नीला अनन्त आकाश-रूपी समुद्र याद आया। कपाल-कुण्डला पहले की स्मृति आलोचना करती हुई अन्यमनस्क होकर चली।

अन्य मन से जाते जाते कहाँ किस उद्देश्य से जा रही थी, यह कपाल-कुण्डला ने न सोचा। जिस रास्ते से जा रही थी, वह क्रमशः अगम्य हो आया। वन निविडतर हो गया। सिर पर पेड़ों की डालों से चाँदनी प्रायः रुद्ध हो आई। क्रमशः और राह नहीं देख पड़ती। रास्ता न देख पड़ने पर कपाल-कुण्डला पहले चिन्ता से कुछ सचेत हुईं। इधर-उधर निगाह दौड़ाकर देखा, इस निबिड वन में प्रकाश हो रहा है। लुत्फ़उन्निसा ने भी पहले यह प्रकाश देखा था। पहले के अभ्यास के कारण कपाल-कुण्डला इन समयों में निडर और कौतूहलमयी थीं। धीरे-धीरे उस दिये की ज्योति की तरफ़ गईं। देखा, जहाँ प्रकाश हो रहा है, वहाँ कोई नहीं। परन्तु उसके कुछ ही दूर पर वन की निविडता के कारण दूर से न देख पड़नेवाला एक टूटा घर है। घर ईंटों का बना हुआ है, परन्तु बहुत ही छोटा, बहुत ही साधारण है। उसमें एक ही कमरा है। उस घर से आदमी की बातचीत की आवाज़ आ

रही थी। कपाल-कुण्डला चुपचाप पैर रखती हुई घर के पास गई। घर के पास जाते ही मालूम दिया, दो आदमी सावधानी से बातें कर रहे हैं। पहले बातचीत उनकी समझ में नहीं आई। बाद को क्रमशः कोशिश करने पर सुनने की तीव्रता पैदा हुई तो नीचे लिखी बातें सुनीं—

एक आदमी कह रहा है, "मेरा अभीष्ट है, मृत्यु हो; इसमें तुम्हारा मत न हो तो मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूँगा, तुम भी मेरी मदद न करना।"

दूसरे आदमी ने कहा, "हित मैं भी नहीं चाहता, परन्तु ज़िन्दगी भर के लिए देश-निकाला हो, इसमें मैं सम्मत हूँ। परन्तु हत्या का कोई उद्योग मुझसे नहीं होगा, बल्कि मैं उसकी प्रतिकूलता करूँगा।"

पहली बात कहनेवाले ने कहा, तुम निरे अबोध और नादान हो। तुम्हें कुछ ज्ञान दे रहा हूँ। मन लगाकर सुनो। बड़ा गूढ़ वृत्तान्त कहूँगा। चारों ओर एक दफा देख आओ, जैसे आदमी की साँस की आहट मिल रही है।"

वास्तव में कपाल-कुण्डला बातचीत अच्छी तरह सुनने के लिए कमरे की दीवार के बहुत पास आकर खड़ी हुई थीं और उनकी आग्रह की अतिशयता और शंका के कारण गहरी-गहरी साँस चल रही थी।

साथी की बात से घर के भीतर से एक व्यक्ति बाहर आया और आकर ही कपाल-कुण्डला को देखा। कपाल-कुण्डला ने भी साफ़ चाँदनी में आनेवाले व्यक्ति का आकार साफ़-साफ़ देखा। देखकर डरेंगी या ख़ुश होंगी, यह निश्चित नहीं कर सकीं। देखा, आगन्तुक ब्राह्मणवेशी है। मामूली धोती पहने हुए है। बदन चादर से अच्छी तरह ढका है। ब्राह्मणकुमार कोमल-वयस्क है, मुँह में उम्र का चिह्न कुछ भी नहीं। मुँह बड़ा सुन्दर है,

सुन्दरी स्त्री के मुँह की तरह सुन्दर है, परन्तु स्त्री के मुँह में वह तेज और गर्व नहीं मिलता। उसके बाल प्रायः पुरुषों के बालों की तरह छोटे कर्म कराये हुए नहीं। स्त्रियों की तरह चादर खोलकर ओढ़े हुए हैं; पीठ में, कन्धों में, बाँहों में और कदाचित् वक्ष पर चदरा सिकुड़ा हुआ पड़ा है। ललाट चौड़ा है, कुछ भरा हुआ, बीच में एक नस तनी हुई शोभा बढ़ा रही है। दोनों आँखें बिजली के प्रकाश से पूर्ण हैं। बिना म्यान की एक लम्बी तलवार हाथ में। परन्तु इस रूपराशि के भीतर एक भीषण भाव व्यक्त हो रहा था। उस हेमकान्त वर्ण पर जैसे कामना की कोई कराल छाया पड़ी थी। अन्तस्तल तक पहुँचकर खोज लेनेवाला कटाक्ष देखकर कपाल-कुण्डला डरीं।

दोनों एक दूसरे की ओर कुछ देर देखते रहे। पहले कपाल-कुण्डला ने पलकें लीं। कपाल-कुण्डला के पलक लेते आगन्तुक ने पूछा, तुम कौन हो?

यदि एक साल पहले हिजली के केवड़े के वन में कपाल-कुण्डला से यह प्रश्न किया जाता तो वे उसी वक्त उसका सङ्गत उत्तर देतीं। परन्तु इस समय कपाल-कुण्डला कुछ हद तक गृह-रमणी के स्वभाव में ढल चुकी थीं, इसलिए एकाएक जवाब नहीं दे सकीं। ब्राह्मणवेशी ने कपाल-कुण्डला को निरुत्तर देखकर कहा, "कपाल-कुण्डला! तुम इस निविड़ वन में रात को किस लिए आई हो?"

न जाने हुए, रात को विचरण करनेवाले, पुरुष के मुख से अपना नाम सुनकर कपाल-कुण्डला तअज्जुब में आ गईं, कुछ डरीं भी। उनके मुँह से एकाएक कोई जवाब नहीं निकला।

सहसा कपाल-कुण्डला को वाक्शक्ति फिर से प्राप्त हुई। उन्होंने उत्तर न देकर कहा, "मैं भी यही पूछ रही हूँ। इस वन में तुम दोनों आदमी इस आधी रात में कौन सा कुपरामर्श कर रहे थे?"

ब्राह्मणवेशी कुछ काल तक निरुत्तर रहकर चिन्तामग्न रहे, जैसे किसी नई अभिलाषा की पूर्ति का उपाय उनके मन में आ उपस्थित हुआ। उन्होंने कपाल-कुण्डला का हाथ पकड़ा और हाथ पकड़कर टूटे गृह से कुछ दूर ले जाने लगे। कपाल-कुण्डला ने बड़े क्रोध से हाथ छुड़ा लिया। ब्राह्मणवेशी ने बड़े कोमल स्वर से कपाल-कुण्डला के कान में कहा, "चिन्ता क्या है, मैं पुरुष नहीं।"

कपाल-कुण्डला और भी चौंकी। इस बात का उन्हें कुछ विश्वास हुआ, पूरा पूरा विश्वास नहीं हुआ। वे ब्राह्मणवेशधारिणी के साथ-साथ गईं। टूटे गृह से अदृश्य जगह जाकर उस ब्राह्मणवेशी ने कपाल-कुण्डला के कान में कहा, "हम लोग जो बुरा परामर्श कर रहे थे, वह सुनोगी? वह तुम्हारे ही संबन्ध में है।"

कपाल-कुण्डला का भय और आग्रह बहुत बढ़ गया। कहा, "सुनूँगी।"

"तो जब तक मैं लौट न आऊँ तब तक यहीं प्रतीक्षा करो।" यह कहकर छद्मवेशी टूटे गृह में लौट आया। कपाल-कुण्डला कुछ देर वहाँ बैठी रहीं। परन्तु जो कुछ देखा था और सुना था, उससे बड़ा विकट भय उनमें पैदा हो गया था। इस समय अकेली अँधेरे वन में बैठी रहने के कारण और भी डरने लगी। ख़ास तौर से, यह छद्मवेशी उन्हें किस अभिप्राय से वहाँ बैठा गया, यह कौन कह सकता है? मुमकिन, सुयोग पाकर अपना बुरा अभिप्राय सिद्ध करने के लिए ही बैठा गया है। इस तरह की आलोचना कर कपाल-कुण्डला भय से विह्वल हुईं। इधर ब्राह्मणवेशी को लौटने में बड़ी देर होने लगी। कपाल-कुण्डला और बैठ नहीं सकीं, तेज़ क़दम घर की तरफ़ चलीं।

तब आकाश घनघटा से काला हो चला। वन के नीचे जो थोड़ा सा प्रकाश था, वह अन्तर्हित होने लगा। कपाल-कुण्डला और क्षणभर के लिए भी नहीं रुक सकीं। जल्द-जल्द पैर बढ़ाती हुई वन के भीतर से बाहर आने लगीं। आने के समय जैसे पीछे दूसरे व्यक्ति के पैर की आहट सुनने लगीं। परन्तु मुँह फेरकर अँधेरे में कुछ देख नहीं पाया। कपाल-कुण्डला ने सोचा, ब्राह्मण-वेशी उनके पीछे आ रहा है। वन छोड़कर पहले कहे छूटे वन-पथ पर आ निकली। वहाँ वैसा अँधेरा नहीं, निगाह की पहुँच में रहने पर आदमी देख पड़ता है। परन्तु कुछ भी नहीं देख पड़ा। इसलिए द्रुत पद से चली, परन्तु फिर साथ आदमी की गति का शब्द सुनने लगी। आकाश नीली कादम्बिनी से और भीषण हो गया। कपाल-कुण्डला और द्रुत चली। घर पास ही है। परन्तु घर पहुँचते-पहुँचते प्रचण्ड वेग से आँधी और पानी घोर रव करता हुआ होने लगा। कपाल-कुण्डला दौड़ी। पीछे जो आदमी आ रहा था, वह भी जैसे दौड़ा, ऐसा शब्द मालूम दिया। घर दिखने के पहले ही प्रचण्ड आँधी और पानी कपाल-कुण्डला के सर से प्रधावित हो चले। बार-बार गम्भीर मेघ-गर्जन और वज्रपात के शब्द होने लगे। बार-बार बिजली कौंधने लगी। मूसलधार पानी बरसने लगा। कपाल-कुण्डला किसी तरह अपने को बचाकर घर आईं। सहन पार कर कमरे पर चढ़ी। उनके लिए द्वारा खुला था। द्वार बन्द करने के लिए सहन की तरफ मुँह किया। मालूम हुआ, जैसे सहन में एक लम्बा आदमी खड़ा है। इसी समय एक बार बिजली कौंधी। एक बार की बिजली में ही उन्होंने उसे पहचान लिया।" वह समन्दर के किनारे का वही कापालिक था।

तीसरा परिच्छेद

स्वप्न में

"I had a dream, which was not all a dream."

—Byron.

कपाल-कुण्डला ने, धीरे-धीरे दरवाज़ा बन्द कर लिया। धीरे-धीरे शयनकक्ष में आईं, धीरे-धीरे पलँग पर लेटीं। आदमी का हृदय अनन्त समुद्र है, जब उस पर पागल हवाएँ लड़ती रहती हैं, तब कौन उसकी तरङ्गों को गिन सकता है? कपाल-कुण्डला के हृदय-समुद्र में जो तरङ्गें उठ रही थीं, उन्हें कौन गिनेगा?

उस रात को नवकुमार हृदय की वेदना के कारण अन्तःपुर नहीं आये। शयनकक्ष में अकेली कपाल-कुण्डला लेटीं। परन्तु आँख नहीं लगी। प्रबल वायु से ताड़ित, वारिधारा से धुला, जटाजूट से घिरा हुआ वह मुँह अँधेरे में भी चारों ओर देखने लगीं। कपाल-कुण्डला पहले सब वृत्तान्त आलोचना करके देखने लगीं! कापालिक के साथ जैसा आचरण करके वे चली आई थीं, वह याद आने लगा। कापालिक घने वन में जो पैशाचिक कार्य करते थे, वे याद आने लगे। उनकी भैरवी-पूजा, नवकुमार का बन्धन, सब याद आने लगे। कपाल-कुण्डला काँप उठीं। आज की रात की कुल घटनाएँ भी मन में उठने लगीं। श्यामा की दवा की इच्छा, नवकुमार का निषेध, उनके प्रति कपाल-कुण्डला का तिरस्कार, इसके बाद अरण्य की ज्योत्स्ना-

मयी शोभा, कानन के नीचे अँधेरा, उस अरण्य में जो सहचर पाया था उसका भीम दर्शन गुणवाला रूप, सब याद आने लगे।

पूर्व में ऊषा की मुकुट-ज्योति निकली, तब कपाल-कुण्डला को कुछ तन्द्रा आई। उस अप्रगाढ़ निद्रा में कपाल-कुण्डला स्वप्न देखने लगीं। वे जैसे उस पहले दिखे समुद्र के वक्ष में नाव पर बैठी हुई जा रही थीं। नाव सजी हुई है; उसमें वसन्ती रङ्ग की पताका उड़ रही है; नाविक फूलों की माला पहने हुए खे रहे हैं। राधाश्याम के अनन्त प्रणय के गीत गा रहे हैं। पश्चिम के आकाश से सूर्य सोने की धारा झर रहा है। सोने की धारा पाकर समुद्र हँस रहा है। आकाश-मण्डल में मेघ उस सोने की वृष्टि में दौड़ते हुए नहा रहे हैं। अकस्मात् रात हुई, सूर्य न जाने कहाँ गया। सोने के मेघ कहाँ गये। निविड़ नील कादम्बिनी ने आकर आकाश छा लिया। अब समुद्र में दिशा का निरूपण और नहीं होता। नाविकों ने नाव लौटाई। किस तरह खेयेंगे, ठीक नहीं कर पा रहे। उन लोगों ने गाना बन्द किया, गले की मालाएँ तोड़ डालीं। वसन्ती रङ्ग की पताका आप खुलकर पानी में गिर गई। तूफ़ान उठा, पेड़ की ऊँचाई की तरङ्गें उठने लगीं, उन तरङ्गों के भीतर से जटाजूटधारी, दीर्घ आकार का एक पुरुष आकर कपाल-कुण्डला की नाव बायें हाथ से उठाकर समुद्र में फेंकने को उद्यत हुआ। ऐसे समय वह भीम-दर्शन श्रीयुक्त ब्राह्मणवेशवाला आकर नाव पकड़े रहा। उसने कपाल-कुण्डला से पूछा, "तुम्हें रक्खूँ या डुबा दूँ?" अकस्मात् कपाल-कुण्डला के मुँह से निकला, "डुबा दो।" ब्राह्मणवेशी ने नाव छोड़ दी। तब नाव भी शब्दमयी हो गई, बोल उठी। नाव ने कहा, "मैं अब और यह भार नहीं ढो सकती। मैं पाताल

में प्रवेश करती हूँ।" यह कहकर नाव उसे पानी में फेंककर पाताल में प्रवेश कर गई।

पसीने-पसीने होकर कपाल-कुण्डला स्वप्न से जगी। आँखें खोलीं, देखा, प्रभात हो गया है, कमरे के झरोखे खुले हुए हैं, उनसे वसन्त की हवा का स्रोत पैठ रहा है। कुछ कुछ हिलती हुई पेड़ों की शाखा में चिड़ियाँ चहक रही हैं। उन झरोखों पर कुछ मनोहर जङ्गली लताएँ सुरभित फूलों के साथ हिल रही हैं। कपाल-कुण्डला नारी-स्वभाव के अनुसार उन लताओं को सुथरा करने लगीं; उन्हें सुशृङ्खलरूप से बाँधते-बाँधते एक से एक चिट्ठी पाई। कपाल-कुण्डला अधिकारी की छात्रा थीं, पढ़ना जानती थीं। नीचे लिखा पत्र पढ़ा—

"आज शाम के बाद कल रात के ब्राह्मणकुमार से मुलाक़ात करना। अपने सम्बन्धवाली एकान्त आवश्यक जो बात सुनना चाहती थीं, वह सुनना।

अहं ब्राह्मणवेशी।"

———

चौथा परिच्छेद

कृतसंकेते

"—I will have grounds
More relative than this."

—Hamlet.

कपाल-कुण्डला उस दिन शाम तक कोई दूसरी चिन्ता न कर यही सोचती रहीं कि ब्राह्मणवेशधारी से मिलना उचित होगा या नहीं। पतिव्रता युवती के लिए रात को एकान्त में अपरिचित पुरुष के साथ मिलना अनुचित है, इस ख़याल से उनके मन में संकोच नहीं हुआ; इस सम्बन्ध में उनका सिद्धान्त निश्चित था कि मिलने का उद्देश अगर बुरा न हो तो ऐसे मिलने में दोष नहीं—पुरुष-पुरुष या स्त्री-स्त्री में जिस तरह मिलने का अधिकार है, स्त्री-पुरुष में मिलने का दोनों के लिए वैसा ही अधिकार है, उसका ख़याल था; विशेष रूप से, ब्राह्मणवेशी पुरुष है या नहीं, इसमें सन्देह है। अस्तु, वह संकोच अनावश्यक है; परन्तु इस मुलाक़ात से भला होगा या बुरा, यही अनिश्चित है, इसलिए कपाल-कुण्डला यहाँ तक संकोच कर रही थीं। पहले ब्राह्मणवेशी की बातचीत, बाद कापालिक को देखना, इसके बाद स्वप्न, इन सब कारणों से कपाल-कुण्डला के हृदय में अपने लिए बड़ा डर हो रहा था। अपना अमङ्गल पास ही है, ऐसा सन्देह प्रबल हो गया था। वह अमङ्गल कापालिक के आने के साथ मिला हुआ है, ऐसा सन्देह भी अमूलक नहीं मालूम दिया। यह ब्राह्मणवेशी उसी का सहचर मालूम देता है, इसलिए उससे मिलने पर उस आशंकावाले

अमङ्गल में के गिर भी सकती हैं। उसने तो साफ़-साफ़ कहा है कि कपाल-कुण्डला के सम्बन्ध में ही परामर्श हो रहा था। परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि मिलने से उसके निराकरण की सूचना होगी। ब्राह्मणकुमार एक व्यक्ति के साथ गुप्त भाव से परामर्श कर रहा था, वह व्यक्ति यही कापालिक मालूम देता है। उस बातचीत में किसी की मृत्यु का संकल्प सूचित हो रहा था, कम से कम सदा के लिए निर्वासन। यह किसके लिए? ब्राह्मणवेशी ने तो साफ़ कह दिया है कि कपाल-कुण्डला के सम्बन्ध में ही कुपरामर्श हो रहा था। तो उसी की मृत्यु या उसी के चिरनिर्वासन की कल्पना हो रही थी। तब, जब कि इस भीषण अभिसन्धि में ब्राह्मणवेशी सहकारी है, तब उसके पास रात में अकेली दुर्गम वन में जाना केवल विपत का कारण हो सकता है। परन्तु कल रात को स्वप्न देखा था; वह स्वप्न;—उस स्वप्न का तात्पर्य क्या है? स्वप्न में ब्राह्मणवेशी ने महाविपत्ति के समय आकर उनकी रक्षा करनी चाही थी, काम में भी वैसा ही आ रहा है। ब्राह्मणवेशी कुल बातें बतलाना चाहते हैं। कपाल-कुण्डला ने स्वप्न में कहा था, "डुबा दो", काम में भी क्या वैसा ही कहेंगी? ब्राह्मणवेशी की सहायता छोड़कर क्या विपत्ति के समुद्र में डूबेंगी? नहीं—नहीं—भक्तवत्सला भवानी ने अनुग्रह करके स्वप्न में उनकी रक्षा के लिए उपदेश दिया है, ब्राह्मणवेशी आकर उनका उद्धार करना चाहते हैं, उनकी सहायता छोड़ने पर डूबेंगी। अस्तु, कपाल-कुण्डला ने उनसे मिलना ही निश्चित किया। विश व्यक्ति इस तरह का सिद्धान्त करते या नहीं, इसमें सन्देह है। परन्तु विश व्यक्ति के सिद्धान्त से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। कपाल-कुण्डला विशेष विश नहीं थी, इसलिए विश का जैसा सिद्धान्त नहीं किया। कौतूहलवाली स्त्री का जैसा सिद्धान्त किया, भीमदर्शन सुन्दर युवा को

देखने के लिए उत्सुक युवती का जैसा सिद्धान्त किया, रात को वन भ्रमण की इच्छा रखनेवाली सन्यासी की पाली हुई का जैसा सिद्धान्त किया, भवानी के भक्ति-भाव में विमोहिता का जैसा सिद्धान्त किया, जलती हुई आग की शिखा में गिरते हुए पतिङ्ग का जैसा सिद्धान्त किया।

सन्ध्या के बाद घर का काम कुछ कुछ पूरा करके कपाल-कुण्डला पहले की तरह वन की ओर चली। चलने के समय शयनकक्ष का दिया तेज़ कर गई। वे ज्योंही कमरे से बाहर हुईं, वैसे ही कमरे का दिया गुल हो गया।

चलते समय कपाल-कुण्डला एक बात भूल गई। ब्राह्मणवेशी ने किस जगह मिलने के लिए लिखा है? इसलिए फिर से पत्र पढ़ना आवश्यक हुआ। घर लौटकर, जिस जगह सुबह चिट्ठी रक्खी थी, वहाँ खोजा, वहाँ चिट्ठी नहीं मिली। याद आया कि बाल बाँधने के समय वह चिट्ठी साथ-साथ रखने के इरादे से कबरी में खोंस ली थी। कबरी में अँगुलियाँ गड़ाकर खोजा। चिट्ठी अँगुलियों में नहीं लगी, तब वेणी खोल दी, फिर भी वह चिट्ठी नहीं मिली। तब घर में दूसरी जगह खोजने लगीं। कहीं भी न मिलने पर, अन्त में, पहली ही जगह मुलाक़ात होगी, ऐसा सिद्धान्त कर फिर चलीं। अवकाश न रहने से उस विशाल केशराशि को फिर से बाँध नहीं सकीं। अस्तु, आज कपाल-कुण्डला अनूढा काल की जैसी केश-मण्डल-मध्यवर्त्तिनी होकर चलीं।

पाँचवाँ परिच्छेद

घर के द्वार पर

"Stand yon a while apart,
Confine yourself but in a patient list."

Othello

जब शाम से पहले कपाल-कुण्डला घर के काम में लगी थीं, तब चिट्ठी जूड़े से खुलकर ज़मीन में गिर गई थी। कपाल-कुण्डला यह नहीं मालूम कर सकी। नवकुमार ने यह देख लिया था। जूड़े से चिट्ठी खुलकर गिरी देखकर नवकुमार विस्मित हुए थे। कपाल-कुण्डला दूसरे काम में गईं तो चिट्ठी खोलकर बाहर ले जाकर पढ़ी थी। उस पत्र के पाठ से एक ही सिद्धान्त सम्भव है। "जो बात कल सुनना चाहती थी, वह बात सुनोगी?" वह क्या है? प्रणय की बात? ब्राह्मणवेशी मृण्मयी का उपपति है? जो आदमी पिछली रात की बातें नहीं जानता, उसके लिए दूसरा सिद्धान्त नहीं हो सकता।

पति के साथ सहगमन के समय अथवा दूसरे कारण से जब कोई पतिव्रता जीती हुई, चिता पर चढ़कर चिता में आग लगाती है तब पहले धूमराशि उठकर चारों तरफ़ से उसे घेर लेती है, उसकी दृष्टि अवरुद्ध करती है, अँधेरा भरती है; बाद को क्रमशः काठ की राशि का जलना आरम्भ होने पर पहले नीचे से साँप की जीभ की तरह दो-एक शिखाएँ आकर अङ्गों में जगह-जगह काटती हैं, बाद को शब्द करती हुई आग की लपटें चारों ओर से आकर घेर लेती हैं और अङ्ग-प्रत्यङ्ग को व्याप्त करती रहती हैं; अन्त में

प्रचण्ड रव से अग्निराशि आकाशमण्डल को आलोकित करती हुई मस्तक को पारकर भस्म कर डालती है।

चिट्ठी पढ़ने पर नवकुमार का ऐसा ही हुआ। पहले समझ नहीं सके। बाद को संशय, फिर निश्चय, अन्त में जलन। आदमी का हृदय एक ही साथ क्लेश या सुख की अधिकता ग्रहण कर नहीं सकता, धीरे धीरे करता है। नवकुमार को पहले धूमराशि ने घेरा, फिर आग की शिखाएँ हृदय को तपाने लगीं, अन्त में अग्निराशि से हृदय भस्म होने लगा। इसमें पहले ही नवकुमार ने देखा कि कपाल-कुण्डला किसी-किसी विषय में उनकी अवाध्य हो गई हैं। खास तौर से कपाल-कुण्डला उनका निषेध होने पर भी जब जहाँ इच्छा, वहाँ अकेली जाती थीं; हर एक के साथ इच्छानुसार आचरण करती थीं; अधिकन्तु उनकी बात की अवहेलना करके आधी रात को अकेली वन घूमने जाती थीं। और कोई होता तो इसमें उसे सन्देह होता, परन्तु नवकुमार के हृदय में कपाल-कुण्डला के लिए सन्देह उठने पर न रोके जानेवाली विच्छू के डंक मारने की जैसी जलन होती थी, इसलिए एक दिन के लिए भी सन्देह को उन्होंने जगह नहीं दी। आज भी सन्देह को जगह न देते, परन्तु आज सन्देह नहीं, प्रतीति आकर खड़ी हुई है।

जलन की पहली बाढ़ घटने पर नवकुमार चुपचाप बैठे हुए बड़ी देर तक रोते रहे। रोकर कुछ हल्के हुए। तब अपना कर्तव्य सोचकर उन्होंने निश्चय किया। आज वे कपाल-कुण्डला से कुछ बोलेंगे नहीं। कपाल-कुण्डला जब शाम को वन की ओर चलेगी, तब छिपकर उनके पीछे लगेंगे, कपाल-कुण्डला का महापाप अपनी आँखों देखेंगे, इसके बाद यह जान दे देंगे। कपाल-कुण्डला से कुछ नहीं बोलेंगे; अपने प्राण देंगे। न देकर करेंगे क्या? इन प्राणों का दुर्वह भार ढोने की उनमें शक्ति नहीं होगी।

यह निश्चय कर कपाल-कुण्डला के बाहर जाने की प्रतीक्षा में वे खिड़कीवाले दरवाज़े की तरफ़ निगाह किये रहे। कपाल-कुण्डला के बाहर निकल कर कुछ दूर जाने पर, नवकुमार भी बाहर निकल रहे थे, ऐसे समय कपाल-कुण्डला चिट्ठी के लिए लौटी; देखकर नवकुमार भी हट गये। अन्त में कपाल-कुण्डला के फिर बाहर निकलकर कुछ दूर जाने पर नवकुमार फिर उनके पीछे निकल रहे थे कि देखा, दरवाज़े को घेरकर एक दीर्घाकार पुरुष खड़ा है।

वह कौन आदमी है, क्यों खड़ा है, जानने की नवकुमार की ज़रा भी इच्छा नहीं हुई। उसकी तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखा। केवल कपाल-कुण्डला की ओर नज़र रखने को उतावले थे। इसलिए रास्ता निकालने के लिए आगन्तुक के हृदय पर हाथ रखकर एक धक्का करना चाहा, परन्तु उसे हटा नहीं सके।

नवकुमार ने कहा, "तुम कौन हो? दूर होओ—मेरा रास्ता छोड़ो।"

आगन्तुक ने कहा, "मैं कौन हूँ, तुम क्या नहीं पहचानते?"

शब्द समुद्र की गरज की तरह कानों में गूँजा! नवकुमार ने आँखें उठाकर देखा, देखा, वह पहले का परिचित जटाजूटधारी कापालिक है।

नवकुमार चौंक उठे; परन्तु डरे नहीं। एकाएक उनका मुँह प्रफुल्ल हुआ, कहा, "कपाल-कुण्डला क्या तुमसे मिलने जा रही है?"

कापालिक ने कहा, "नहीं।"

जलते ही आशा का दिया तभी गुल हो गया। नवकुमार के मुँह पर पहले का-सा मेघों का अँधेरा छा गया। कहा, "तो तुम रास्ता छोड़ दो।"

कापालिक ने कहा, "रास्ता छोड़ रहा हूँ, लेकिन तुमसे मेरी कुछ बात है—पहले सुन लो।"

नवकुमार ने कहा, "तुम्हारे साथ मेरी और कौन सी बात? क्या तुम फिर मेरे प्राणनाश के लिए आये हो? प्राण लो. मैं अब कोई रुकावट नहीं डालूँगा। अभी तुम प्रतीक्षा करो, मैं आता हूँ। क्या मैंने देवतुष्टि के लिए शरीर नहीं दिया? अब उसका फलभोग किया। जिसने मुझे बचाया था, उसी ने मुझे मारा। कापालिक! मुझपर अब अविश्वास न करना। मैं अभी आकर तुम्हें आत्मसमर्पण करूँगा।"

कापालिक ने कहा, "मैं तुम्हारी जान लेने नहीं आया। भवानी की इच्छा ऐसी नहीं। मैं जो कुछ करने के लिए आया हूँ, वह तुमसे अनुमोदित होगा। मकान के भीतर चलो, मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सुनो।"

नवकुमार ने कहा, "अभी नहीं। दूसरे समय वह सुनूँगा। तुम अभी प्रतीक्षा करो। मुझे स्नान ज़रूरत है। पूरी इसके आता हूँ।"

कापालिक ने कहा, "वत्स! मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम उस पापिनी के पीछे लगोगे। वह जहाँ जायगी मैं जानता हूँ। मैं तुम्हें स जगह अपने साथ ले जाऊँगा। जो देखना चाहते हो, दिखाऊँगा। अभी मेरी बात सुनो। कोई भय न करो।"

"और अब तुमसे मुझे कोई भय नहीं। आओ।" यह कहकर नवकुमार कापालिक को घर के भीतर ले गये, बैठाला और खुद बैठकर बोले, "कहो।"

छठा परिच्छेद

फिर बातचीत पर

"तदगच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यम ।"

—कुमारसम्भव ।

आसन ग्रहण करके कापालिक ने दोनों बाँह नवकुमार को दिखाईं । नवकुमार ने देखा, दोनों बाहें टूटी हुई हैं ।

पाठक महाशयों को याद होगा, जिस रात को कपाल कुण्डला के साथ नवकुमार समुद्र के किनारे से भागे थे, उस रात को उनकी खोज करते हुए कापालिक बालू के शिखर से गिर गये थे । गिरते वक्त दोनों हाथों से ज़मीन पकड़कर देह बचाने की कोशिश की थी, इससे देह की तो रक्षा हुई, मगर दोनों हाथ टूट गये । यह कुल हाल कापालिक ने नवकुमार को सुनाया, "यहाँ से नित्य-क्रिया के निर्वाह में विशेष विघ्न नहीं होता । परन्तु इनमें बल कुछ भी नहीं रह गया । यहाँ तक कि इनसे लकड़ी इकट्ठी करने में भी तकलीफ होती है ।"

फिर कहने लगे, "गिरने के साथ ही मैं समझ गया था कि मेरे दोनों हाथ टूट गये हैं, दूसरे अङ्ग अभग्न हैं, ऐसा नहीं; मैं गिरने के साथ ही मूर्च्छित हो गया था । पहले बिलकुल बेहोश था । फिर होश हुआ, फिर बेहोश हो गया । कितने दिन मैं इस हालत में रहा, कह नहीं सकता । जान पड़ता है, दो रात एक दिन रहा । सुबह को मुझे पूरी तरह फिर से होश हुआ । उसके कुछ ही पहले मैं एक स्वप्न

देख रहा था। जैसे भवानी, —कहते-कहते कापालिक की देह रोमाञ्चित हुई। जैसे भवानी आकर मेरे सामने प्रत्यक्ष हुई हैं। भौंहें चढ़ाकर मेरा ताड़न कर रही हैं। कह रही हैं, 'अरे दुराचारी, तेरे ही चित्त की अशुद्धि के कारण मेरी पूजा में यह विघ्न हुआ। तूने अब तक इन्द्रिय की लालसा में बँधकर इस कुमारी के रुधिर से अब तक मेरी पूजा नहीं की। अतएव इस कुमारी से ही तेरे पहले के किये के फल नष्ट हुए। मैं तुझसे अब कभी पूजा ग्रहण नहीं करूँगी।' तब मैं रोता हुआ माता के पैरों पर लोटने लगा। वे प्रसन्न होकर बोलीं, "भद्र! इसका एक मात्र प्रायश्चित्त यह करना कि उस कपाल-कुण्डला को मेरे पास बलि देना। जब तक न दे सको, मेरी पूजा न करना'।

"कितने दिन में या किस तरह मैं अच्छा हुआ, इसके वर्णन की आवश्यकता नहीं। समय पर अच्छा होकर देवी की आज्ञा पूरी करने की कोशिश शुरू की। देखा कि इन बाँहों में शिशु का बल भी नहीं। बाहुबल के बिना प्रयत्न पूरा नहीं हो सकता। इसलिए एक सहचर आवश्यक हुआ। परन्तु मनुष्यों की धर्म में थोड़ी मति है, विशेष रूप से कलि के प्राबल्य में यवन राजा है, पापात्मक राज-शासन के भय से कोई ऐसे कार्य में सहचर नहीं होता। बड़ी खोज से मैंने पापिनी के वासस्थान का पता लगाया है। परन्तु बाँहों में बल न रहने के कारण मैं भवानी की आज्ञा नहीं पाल सका। केवल मानस सिद्धि के लिए तान्त्रिक विधान के अनुसार क्रियाकलाप करता हूँ। कल रात को पास के वन में होम कर रहा था, अपनी आँखों देखा, कपाल-कुण्डला के साथ एक ब्राह्मणकुमार का मेल हुआ। आज भी वह उससे मिलने जा रही है। देखना चाहते हो तो मेरे साथ आओ, मैं दिखाऊँ।

"वत्स ! कपाल-कुण्डला वध के योग्य है। मैं भवानी की आज्ञा के अनुसार उसका वध करूंगा। वह तुम्हारे पास भी विश्वास-घातिनी है, तुम्हारे लिए भी वध योग्य है, इसलिए तुम मुझे वह सहायता दो। इस अविश्वासिनी को पकड़कर मेरे साथ यज्ञस्थान को ले चलो। वहाँ अपने हाथ से इसकी बलि चढ़ाओ। इससे ईश्वरी के पास जो अपराध तुमने किया है, उसकी माफ़ी होगी; पवित्र कर्म से अक्षय-पुण्य-सञ्चय होगा, विश्वासघातिनी का दण्ड होगा; प्रतिशोध का चरम होगा।"

कापालिक ने बात पूरी की। नवकुमार ने कोई भी उत्तर नहीं दिया। कापालिक ने उन्हें नीरव देखकर कहा, "वत्स ! इस समय जो कुछ दिखाने के लिए मैंने कहा था, वह देखोगे, चलो।"

नवकुमार पसीने पसीने होकर कापालिक के साथ साथ चले।

सातवाँ परिच्छेद

सौत के सम्भाषण में

"Be at peace; it is your sister that addresses
You, Requite Lucretia's love."

Lucretia.

कपाल-कुण्डला घर से निकलकर वन में पैठी। पहले टूटे गृह में गई। वहाँ ब्राह्मण को देखा। अगर दिन होता तो देखतीं, उनकी मुख-कान्ति बहुत ही मलिन हो गई है। ब्राह्मणवेशी ने कपाल-कुण्डला से कहा, "यहाँ कापालिक आ सकता है। यहाँ किसी तरह की बातचीत उचित नहीं। चलो, दूसरी जगह चलें।" वन में एक कम-चौड़ी जगह थी। उसके चारों तरफ़ पेड़ थे। बीच में साफ़। वहाँ से एक रास्ता बाहर को निकल गया है। ब्राह्मणवेशी कपाल-कुण्डला को वहाँ ले गये। दोनों बैठे। ब्राह्मणवेशी ने कहा, "पहले मैं अपना परिचय दूँ। कहाँ तक मेरी बात विश्वास के योग्य है, यह तुम ख़ुद समझ लोगी। जब तुम अपने पति के साथ हिजली प्रान्त में आ रही थीं तब रास्ते में रात को एक यवनकन्या से मुलाक़ात हुई थी। तुम्हें क्या वह याद है?"

कपाल-कुण्डला ने कहा, "जिन्होंने मुझे गहने दिये थे!"

ब्राह्मणवेश-धारिणी ने कहा, "मैं वही हूँ।"

कपाल-कुण्डला बहुत ही विस्मित हुई। उनका विस्मय देखकर लुत्फ़उन्निसा ने कहा, "विस्मय का और भी विषय है—मैं तुम्हारी सौत हूँ।"

तअज्जुब में आकर कपाल-कुण्डला ने कहा, "वह कैसे ?"

लुत्फ़उन्निसा तब शुरू से अपना परिचय देने लगी। विवाह, जाति-नाश, पति का त्याग, डाका, आगरा, जहाँगीर, मेहरुन्निसा, आगरात्याग, सप्तग्राम में वास, नवकुमार से मुलाक़ात, नवकुमार का व्यवहार, पिछले दिन प्रदोष-काल में वेश बदलकर वन में आना, होमकारी से मुलाक़ात, सब कहा। इसी समय कपाल-कुण्डला ने पूछा, "तुमने किस अभिप्राय से हमारे मकान में वेश बदलकर आने की इच्छा की थी ?"

लुत्फ़उन्निसा ने कहा, "तुम्हारे साथ तुम्हारे पति का सदा का विच्छेद कर देने के अभिप्राय से।"

कपाल-कुण्डला सोचने लगी। पूछा, "वह किस तरह सिद्ध करती ?"

लुत्फ़उन्निसा—फ़िलहाल तुम्हारे सतीत्व की तरफ़ तुम्हारे पति का संशय पैदा कर देती। परन्तु उस बात की अब आवश्यकता क्या है ? वह रास्ता मैंने छोड़ दिया है। इस समय तुम अगर मेरी सलाह के अनुसार काम करो, तो तुम्हीं से मेरी कामना सिद्ध हो जायगी। साथ-साथ तुम्हारा मङ्गल भी होगा।

कपा०—होमकारी के मुख से तुमने किसका नाम सुना था ?

लु०—तुम्हारा ही नाम। वे तुम्हारे मङ्गल या अमङ्गल की कामना से होम कर रहे हैं, यह जानने के लिए प्रणाम कर उनके पास बैठी। जब तक उनकी क्रिया पूरी नहीं हुई, तब तक वहाँ बैठी रही। होम हो जाने पर, तुम्हारे नाम के साथ होम करने का अभिप्राय छल से पूछा। कुछ देर तक उनसे बातचीत करके मालूम किया, तुम्हारा अमङ्गल करना ही होम का प्रयोजन है। मेरा भी वही प्रयोजन है। यह भी उनसे मैंने कहा। उसी वक़्त हम एक दूसरे की मदद के लिए बँधे। ख़ास सलाह के लिए वे मुझे

उस टूटे घर के भीतर ले गये। वहाँ अपने मन की बात खोलकर कही। तुम्हारी मौत ही उन्हें अभीष्ट है। इसमें मेरा कोई इष्ट नहीं। मैंने इस जन्म में पाप ही किये हैं, परन्तु पाप के रास्ते मेरा इतना पतन नहीं हुआ कि मैं निरपराध बालिका को मौत के घाट उतारूँ। मैंने उसमें सम्मति नहीं दी। इसी समय तुम वहाँ पहुँची थी। मुमकिन, कुछ सुना भी हो।

कपा०—मैंने ऐसी ही बातचीत सुनी थी।

लु०—उस आदमी ने मुझे नासमझ नादान सोचकर कुछ उपदेश देना चाहा। अन्त क्या ठहरता है, यह मालूम कर तुम्हें उचित संवाद देना चाहती थी, इसलिए तुम्हें वन में, आड़ में, बैठा गई थी।

कपा०—फिर लौटीं क्यों नहीं?

लु०—उन्होंने बहुत सी बातें कहीं। विस्तार से कही बातें सुनते देर हो गई। तुम उस आदमी को अच्छी तरह जानती हो। वह कौन है, क्या समझ में आता है?

कपा०—मुझे पहले पालनेवाला कापालिक।

लु०—वही है। पहले समुद्र के किनारे तुम्हें पाना, वहाँ पालन-पोषण करना, नवकुमार का पहुँचना, उनके साथ तुम्हारा भागना, यह कुल हाल कापालिक ने कहा। तुम लोगों के भागने के बाद जो-जो कुछ हुआ, वह भी कहा। वे सब बातें तुम नहीं जानतीं। तुम्हारी जानकारी के लिए विस्तारपूर्वक कहती हूँ।

यह कहकर लुत्फउन्निसा ने कापालिक का शिखर से गिरना, हाथ टूटना, स्वप्न, सब कहा। स्वप्न सुनकर कपाल कुण्डला चौंककर काँप उठी। चित्त में बिजली की चञ्चलता आ गई। लुत्फउन्निसा कहने लगी, "कापालिक की दृढ़-प्रतिज्ञा है भवानी की आज्ञा का पालन करना। यहाँ बलहीन हैं, इसलिए दूसरे की मदद निहायत

ज़रूरी है। मुझे ब्राह्मण-तनय विचार कर मदद करने की आशा से कुल वृत्तान्त कहा था। मैंने अब तक इस पापकर्म में मञ्ज़ूरी नहीं दी। इस बुरे भाव के चित्त की बात नहीं कह सकती, परन्तु भरोसा है कि कभी भी मञ्ज़ूरी नहीं दूँगी; बल्कि इस संकल्प का विरोध करूँगी, ऐसा अभिप्राय है। इसी अभिप्राय से मैंने तुमसे मुलाक़ात की। लेकिन इस काम में बिलकुल स्वार्थ छोड़कर मैंने हाथ नहीं लगाया। तुम्हें प्राणों का दान दे रही हूँ, लेकिन तुम भी मेरे लिए कुछ करो।"

कपाल-कुण्डला ने पूछा, "क्या करूँ ?"

लु०—मुझे भी प्राणदान दो, पति का त्याग करो।

कपाल कुण्डला देर तक नहीं बोलीं। बड़ी देर बाद कहा, "पति का त्याग कर कहाँ जाऊँगी ?"

लु०—विदेश में— बहुत दूर, तुम्हें प्रासाद दूँगी, धन दूँगी, दास-दासियाँ दूँगी, रानी की तरह रहोगी।

कपाल कुण्डला फिर चिन्ता करने लगी। संसार के सर्वत्र मानस नेत्रों से देखा, कहीं किसी को भी नहीं देखा। अन्तःकरण में दृष्टिपात कर देखा, वहाँ नवकुमार को नहीं देखा, फिर क्यों लुत्फउन्निसा के सुख का रास्ता रोकें ? लुत्फउन्निसा से कहा, "तुमने मेरा उपकार किया है या नहीं, अभी तक यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। प्रासाद, धन-सम्पत्ति, दास-दासियों की भी ज़रूरत नहीं। मैं तुम्हारे सुख का रास्ता क्यों रोकूँगी ? तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो। कल से इस विघ्नकारिणी का कोई संवाद तुम्हें नहीं मिलेगा। मैं वनचारिणी थी, फिर वनचारिणी हूँगी।"

लुत्फउन्निसा आश्चर्य में आईं। इस तरह जल्द स्वीकार कर लेने की आशा उन्होंने नहीं की। मोहित होकर बोलीं, "बहन, तुम्हारी बड़ी उम्र हो। तुमने मुझे प्राण दिये। परन्तु तुम्हें मैं अनाथ

होकर नहीं जाने दूँगी। कल सुबह तुम्हारे पास एक विश्वास-योग्य चतुर दासी भेजूँगी। उसके साथ जाना। बर्दवान में कोई बहुत बड़ी स्त्री मेरी सखी हैं, वे तुम्हारी कुल ज़रूरतें पूरी कर देंगी।"

लुत्फउन्निसा और कपाल-कुण्डला इस तरह मन लगाकर बातें कर रही थीं कि सामने के विघ्न की ओर एक बार भी आँख नहीं गई। जो जङ्गली रास्ता उनके पास से बाहर को निकला था, उस रास्ते के किनारे खड़े होकर कापालिक और नवकुमार उनकी तरफ जो कराल दृष्टिपात कर रहे थे, उसे एक दफा भी नहीं देखा।

नवकुमार और कापालिक इन्हें देख तो रहे थे, लेकिन दुर्भाग्य से उतनी दूर से इनकी बातचीत का कुछ भी हिस्सा उन दोनों ने नहीं सुना। मनुष्य की आँख और कान अगर दूरगामी होते तो मनुष्य के दुःख का स्रोत घटता या बढ़ता, कौन कह सकता है? लोग कहते रहते हैं, संसार की रचना अपूर्व कौशल से पूर्ण है।

नवकुमार ने देखा, कपाल कुण्डला के बाल खुले हुए हैं। जब कपाल-कुण्डला उनकी नहीं हुई, तभी से वह बाल नहीं बाँधती। फिर देखा कि बालों की वह राशि ब्राह्मणकुमार की पीठ पर पड़ी हुई उनके कन्धों को चूमते बालों से मिल रही है। कपाल कुण्डला के बाल इतने लम्बे थे और धीमे स्वर से बातचीत करने की ग़रज़ से दोनों एक दूसरे के इतने निकट होकर बैठी थीं कि लुत्फउन्निसा की पीठ तक कपाल-कुण्डला के बाल फैल रहे थे। देखकर नवकुमार धीरे से ज़मीन पर बैठ गये।

यह देखकर कमर से बँधा एक नारियल का पात्र निकालकर कापालिक ने कहा, "वत्स! बल खो रहे हो। यह महौषध पान करो। यह भवानी का प्रसाद है। पीकर बल पाओगे।"

कापालिक ने नवकुमार के मुँह के पास पात्र रक्खा। अन्य मन से पीते हुए उन्होंने प्रबल प्यास बुझाई। नवकुमार नहीं जानते थे कि यह सुस्वादु पेय कापालिक की अपने हाथ तैयार की प्रचण्ड तेजस्विनी सुरा थी। पीने के साथ उनमें बल आया।

इधर लुत्फउन्निसा पहले की तरह मधुर स्वर से कपाल-कुण्डला से कहने लगी, "बहन! तुमने जो काम किया, उसका बदला चुकाने की मुझमें शक्ति नहीं। फिर भी अगर मैं हमेशा तुम्हें याद रहूँ, वह भी मेरे लिए सुख है। जो गहने तुम्हें दिये थे, सुना है, तुमने दरिद्र को दे दिये हैं। अब पास कुछ भी नहीं। कल की दूसरी ज़रूरत सोचकर एक अंगूठी ले आई थी। ईश्वर की इच्छा से उस पाप प्रयोजन की सिद्धि ज़रूरी नहीं मालूम दी। यह अंगूठी तुम रक्खो। इसके बाद अंगूठी देखकर यवनी बहन की याद करना। आज अगर पति पूछें, 'यह अंगूठी कहाँ मिली?' कहना 'लुत्फउन्निसा ने दी है'। यह कहकर लुत्फउन्निसा ने अपनी उंगली से लम्बी क़ीमत से ख़रीदी हुई एक अंगूठी निकाल कर कपाल-कुण्डला के हाथ में डाल दी। नवकुमार ने यह भी देखा। कापालिक उन्हें पकड़े हुए थे, फिर उन्हें काँपते हुए देखकर मदिरा का सेवन कराया। मदिरा नवकुमार के मस्तिष्क में पहुँचकर, उनकी प्रकृति का सहार करने लगी, स्नेह का अङ्कुर तक उन्मूलित करने लगी।

कपाल-कुण्डला लुत्फउन्निसा से विदा होकर घर की तरफ चली। तब नवकुमार और कापालिक लुत्फउन्निसा की दृष्टि से बाहर रहकर कपाल-कुण्डला का अनुसरण करने लगे।

आठवाँ परिच्छेद

घर की ओर

"No apectre greets me—no vain shadow this."

—Wordsworth

कपाल-कुण्डला धीरे-धीरे घर की तरफ़ चली। बहुत धीरे-धीरे बहुत मृदु-मृदु चली। इसका कारण, वे बहुत ही गहरी चिन्ता में डूबी हुई जा रही थीं। लुत्फ़उन्निसा के संवाद से कपाल-कुण्डला का एक साथ चित्त का भाव बदल गया। वे आत्म-विसर्जन के लिए तैयार हो गईं। आत्म-विसर्जन किस लिए? लुत्फ़उन्निसा के लिए? ऐसा नहीं।

अन्तःकरण से जहाँ तक सम्बन्ध है, कपाल-कुण्डला तान्त्रिक की लड़की है। तान्त्रिक जिस तरह काली के प्रसाद की आकांक्षा से दूसरे की जान लेने में संकोच-रहित है, कपाल-कुण्डला भी उसी आकांक्षा से अपने जीवन की बलि देने में वैसी ही। कपाल-कुण्डला कापालिक की तरह अनन्यचित्त होकर शक्तिप्रसादप्रार्थिनी हुई थी, ऐसा नहीं; किन्तु दिनरात शक्ति की भक्ति सुनने, देखने और साधने से उनके मन में कालिकानुराग विशेष रूप से पैदा हो गया था। भैरवी सृष्टि का शासन करनेवाली और मुक्ति देनेवाली हैं, यह विश्वास ख़ास तौर से उनमें जड़ जमा चुका था। कालिका की पूजा-भूमि मनुष्य के ख़ून से प्लावित होती है, यह उनके दूसरे के दुःख से कातर हुए हृदय को मग्न नहीं था, नहीं तो दूसरे किसी

कार्य में भक्ति-प्रदर्शन की त्रुटि नहीं होती थी। अब संसार का शासन करनेवाली, सुख और दुःख का विधान करनेवाली, कैवल्य देनेवाली उन्हीं भैरवी ने उन्हें जीवन-समर्पण करने को स्वप्न में आज्ञा दी है। क्यों कपाल-कुण्डला उस आदेश का पालन नहीं करेंगी?

हम-तुम जान नहीं देना चाहते। अनुराग में कहते हैं, यह संसार सुखमय है। सुख की आशा में ही लट्टू की तरह संसार में घूम रहे हैं—दुःख की आशा में नहीं। कदाचित् यदि हमारे कर्मों के दोष से वह आशा पूरी न हुई, तो दुःख कहकर ऊँचे स्वर से कलरव करने लगते हैं। इसी से दुःख नियम नहीं, सिद्धान्त हुआ, नियम का सिर्फ़ व्यतिक्रम। तुम्हें-हमें सब जगह सुख है। उसी सुख की संसार में हमारी जड़ गड़ी हुई है। हम उसे छोड़ना नहीं चाहते। परन्तु इस संसार के बन्धन की प्रणय प्रधान रस्सी है। कपाल-कुण्डला के वह बन्धन नहीं था—कोई भी बन्धन नहीं था। फिर कपाल-कुण्डला को कौन रख सकता है?

जिसके बन्धन नहीं, उसी का वेग अप्रतिहत है। पहाड़ की चोटी से झरना उतरने पर कौन उसकी गति को रोक सकता है? एक दफ़ा हवा बहने पर कौन उसके बहाव को रोक सकता है? कपाल-कुण्डला का चित्त चञ्चल होने पर कौन उसे स्थिर करेगा? नया हाथी मतवाला होने पर कौन उसे शान्त करेगा?

कपाल-कुण्डला ने अपने चित्त से पूछा, "क्यों इस शरीर को जगदीश्वर के चरणों में अर्पित नहीं करूँगी? पञ्चभूत लेकर क्या होगा?" प्रश्न कर रही थीं, पर कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पा रही थीं। संसार में दूसरा कोई बन्धन न रहने पर भी पञ्चभूतों का एक बन्धन है।

कपाल-कुण्डला सर झुकाये हुए चलती गईं। जब मनुष्य का हृदय किसी उत्कट भाव से घिरता है, चिन्ता की एकाग्रता से बाह्य-सृष्टि की तरफ़ निगाह नहीं रहती, तब अनैसर्गिक पदार्थ भी प्रत्यक्ष हुआ मालूम देता है। कपाल-कुण्डला की वही अवस्था हुई थी।

जैसे ऊपर से यह शब्द उनके कान में गया, "वत्से! मैं रास्ता दिखा रही हूँ। कपाल-कुण्डला ने चकित हुई जैसी निगाह ऊपर उठाई। देखा, जैसे आकाश-मण्डल में नये बादलों को निन्दित करनेवाली मूर्ति है। गले में पड़ी नर-कपाल-माला से रुधिर निकल रहा है; कटिमण्डल को घेरकर नर-कर हिल रहे हैं; बाँयें हाथ में नर-कपाल है, अङ्गों में रुधिर की धारा; ललाट में, विषमोज्ज्वल ज्वालावाली आँखों के किनारे वाचलन्द्र शोभित है। जैसे भैरवी दाहना हाथ उठाकर कपाल-कुण्डला को बुला रही है।

कपाल-कुण्डला ऊर्ध्वमुखी होकर चलीं। वह नई कादंबिनी जैसी मूर्ति आकाशमार्ग में उनके आगे आगे चली। कभी कपाल-मालिनी का अवयव बादलों में छिप जाता है, कभी आँखों में स्पष्ट रूप से खुल जाता है। कपाल-कुण्डला उनकी ओर देखती हुई चलीं।

नवकुमार या कापालिक ने यह कुछ नहीं देखा। नवकुमार का हृदय सुरा के गरल से जल रहा था। कपाल-कुण्डला के धीर पदक्षेप से असहिष्णु होकर साथी से उन्होंने कहा, "कापालिक।"

कापालिक ने कहा, "क्या?"

"पानीयं देहि मे।"

कापालिक ने फिर उन्हें शराब पिलाई।

नवकुमार ने कहा, "अब देर क्या है?"

कापालिक ने जवाब दिया, "अब देर क्या है?"

नवकुमार ने भीमनाद से पुकारा, "कपाल-कुण्डले।"

कपाल-कुण्डला सुनकर चौंक उठीं। इधर कोई उन्हें कपाल-कुण्डला कहकर नहीं पुकारता था। वे मुँह फेरकर खड़ी हो गईं। नवकुमार और कापालिक उनके सामने आये। पहले कपाल-कुण्डला उन्हें पहचान नहीं सकीं। कहा, "तुम लोग कौन? यमदूत हो?"

दूसरे ही क्षण पहचानकर कहा, "नहीं, नहीं, पितः, तुम क्या मुझे बलि देने के लिए आये हो?"

नवकुमार ने दृढ़ मुट्ठी से कपाल-कुण्डला का हाथ पकड़ा। करुणा से आर्द्र हो मधुर स्वर से कापालिक ने कहा, "वत्से! हमारे साथ आओ।" यह कहकर कापालिक श्मशान की तरफ़ रास्ता दिखाकर चले।

कपाल-कुण्डला ने आकाश में दृष्टि डाली, जहाँ गगनविहारिणी भयंकरी को देखा था, उसी तरफ़ देखा। देखा, रण-रङ्गिणी खल-खल हँस रही हैं; एक दीर्घ त्रिशूल हाथ में लिये कापालिक के चले रास्ते की तरफ़ संकेत कर रही हैं। कपाल-कुण्डला, अदृष्ट से जैसे विमूढ़ हो गई हों इस तरह, बिना कुछ बोले, कापालिक के पीछे-पीछे चलीं। नवकुमार पहले की तरह दृढ़ मुट्ठी से उनका हाथ पकड़े हुए चले।

नवकुमार ने कहा, "भय से नहीं, रो नहीं सकता, इसी क्रोध से काँप रहा हूँ।"

कपाल-कुण्डला ने पूछा, "रोओगे क्यों?"

फिर वही कण्ठ।

नवकुमार ने कहा, "रोऊँगा क्यों? तुम क्या समझोगी मृण्मयि! तुम तो कभी रूप देखकर पागल नहीं हुईं"—कहते-कहते नवकुमार का गला दर्द से भर आने लगा। "तुम तो कभी अपना हृत्पिण्ड आप ही काटकर श्मशान में फेंकने आईं नहीं।" यह कहकर एकाएक नवकुमार फूट-फूटकर रोते हुए कपाल-कुण्डला के पैरों पर पछाड़ खाकर गिर गये।

"मृण्मयि, कपाल-कुण्डले, मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ रहा हूँ—एक दफ़ा कहो कि तुम अविश्वासिनी नहीं—एक दफ़ा कहो, मैं तुम्हें हृदय पर उठाकर घर ले जाऊँ।"

कपाल-कुण्डला ने हाथ पकड़कर नवकुमार को उठाया—मृदु स्वर से कहा, "तुमने तो पूछा नहीं?"

जब यह बात हुई तब दोनों पानी के किनारे आकर खड़े हुए थे; कपाल-कुण्डला आगे थीं, नदी की तरफ़ पीठ किये हुए; उनके पीछे एक क़दम बाद ही पानी था। अब ज्वार चढ़ना शुरू हो गया था, कपाल-कुण्डला एक टीले पर खड़ी थीं। उन्होंने जवाब दिया – "तुमने तो पूछा नहीं!"

नवकुमार ने पागल की तरह कहा, "होश खो चुका हूँ, क्या पूछूँ—कहो, मृण्मयि कहो—कहो—कहो—मेरी रक्षा करो। घर चलो!"

कपाल-कुण्डला ने कहा, "जो कुछ पूछो, कहूँगी। आज जिसे देखा है, वह पद्मावती है। मैं अविश्वासिनी नहीं। यह सही-सही बात कही। परन्तु अब मैं घर नहीं जाऊँगी। भवानी के

चरणों में देह छोड़ने आई हूँ—ज़रूर ऐसा करूँगी। स्वामिन्! घर लौट जाओ। मैं मरूँगी। मेरे लिए रोओ नहीं।"

"नहीं—मृण्मयि!—नहीं—" इस तरह ऊँचे स्वर से कहते हुए नवकुमार ने कपाल-कुण्डला को हृदय में धारण करने के लिए बाँहें फैलाईं, परन्तु फिर कपाल-कुण्डला को नहीं पाया। चैत की हवा से उठी एक विशाल तरङ्ग आकर किनारे जहाँ कपाल-कुण्डला खड़ी थीं, उसके नीचे टकराई, साथ ही वह मृत्तिकाखण्ड कपाल-कुण्डला के साथ घोर रव से नदी-प्रवाह में टूटकर गिर गया।

नवकुमार ने तट के टूटने का शब्द सुना, कपाल-कुण्डला अन्तर्हित हो गईं देखा। साथ ही उनके पीछे पानी मे कूदे। नवकुमार तैरने में ऐसे कमज़ोर नहीं थे। कुछ देर तक तैरते हुए कपाल-कुण्डला को खोजते रहे। लेकिन उन्हें नहीं पाया, वे भी किनारे नहीं चढ़े।

उस अनन्त गङ्गाप्रवाह में वसन्तवायु से क्षिप्त वीचिमाला मे आन्दोलित होते-होते कपाल-कुण्डला और नवकुमार कहाँ गये?

——